त्रैमासिक • जनवरी-मार्च 2003 • आठ रुपये

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

# आह्वान

## कैम्पस टाइम्स

**किस चीज़ का इन्तज़ार है**
**और कब तक ?**
**दुनिया को तुम्हारी जरूरत है !**

गुजरात और उसके बाद
नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्म कुण्डली
बिहार और उत्तरांचल में छात्र असन्तोष
आज के भारत में अलगाव का सवाल
पदमस्त साम्राज्यवादी हाथी गहरे दलदल की ओर
अंशि प्रकाश की कविता अगर तुम युवा हो !
नाजिम हिकमत की दो कविता

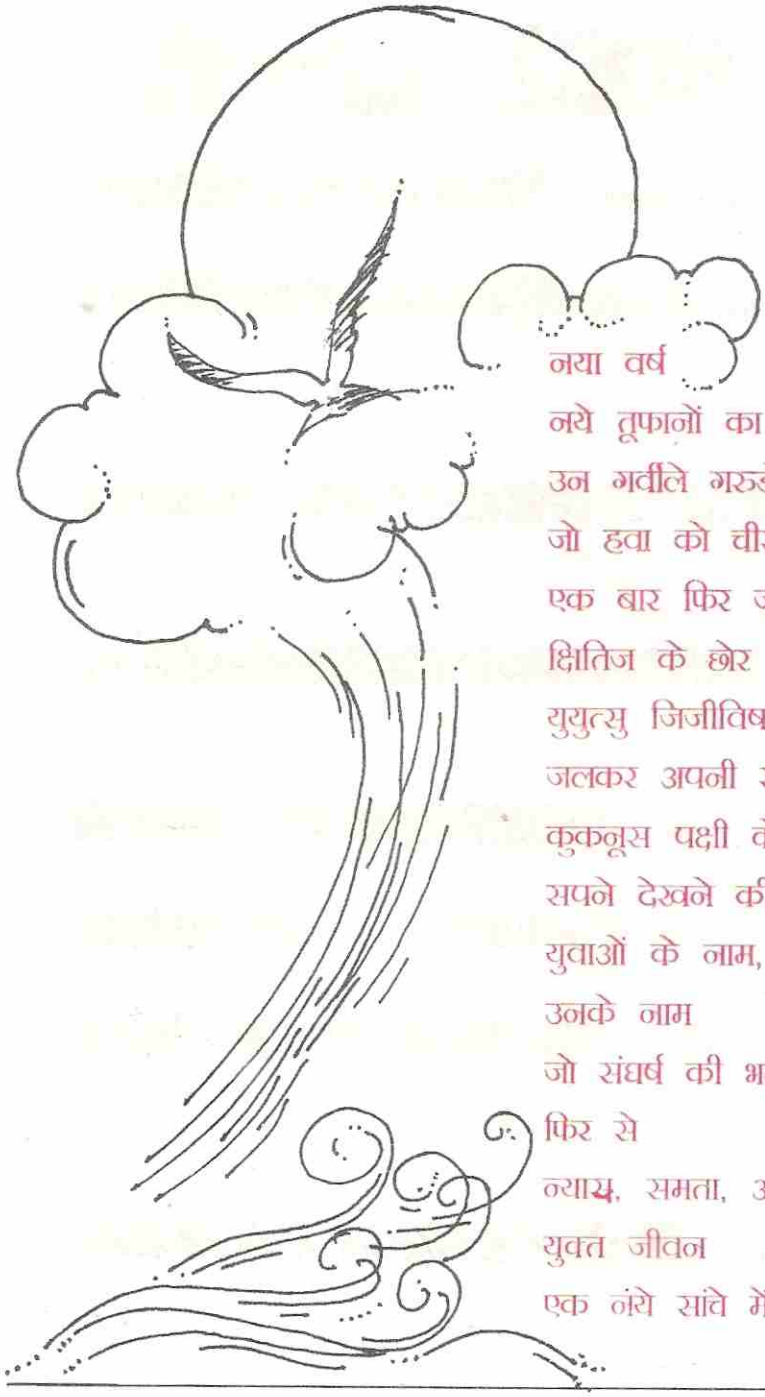

नया वर्ष
नये तूफानों का आवाहन करते
उन गर्वीले गरुड़ों के नाम
जो हवा को चीरते
एक बार फिर जाना चाहते हैं
क्षितिज के छोर तक,
युयुत्सु जिजीविषा के नाम,
जलकर अपनी राख से फिर पैदा होने वाले
कुकनूस पक्षी के नाम,
सपने देखने की आदत न छोड़ने वाले
युवाओं के नाम,
उनके नाम
जो संघर्ष की भट्ठी सुलगा रहे हैं
फिर से
न्याय, समता, आज़ादी और सौन्दर्य से
युक्त जीवन
एक नये सांचे में ढालकर गढ़ने के लिए।

-दिशा छात्र संगठन

---

जिस धरती पर हर अगले मिनट एक बच्चा भूख या बीमारी से मरता हो, वहां पर शासक वर्ग की दृष्टि से चीज़ों को समझने की आदत डाली जाती है। लोगों को इस दशा को एक स्वाभाविक दशा समझने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। लोग व्यवस्था को देशभक्ति से जोड़ लेते हैं और इस तरह से व्यवस्था का विरोधी एक देशद्रोही अथवा विदेशी एजेन्ट बन जाता है। जंगल के कानूनों को पवित्र रूप दे दिया जाता है ताकि पराजित लोग अपनी हालत को अपनी नियति समझ बैठें।

-एदुआर्दो ख़ालीआनो ( अर्जेण्टीना का लेखक )

## आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

भारतीय क्रान्ति का रास्ता मेहनतकश वर्गों के नेतृत्व में साम्राज्यवाद- पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति का रास्ता है। यह नई समाजवादी क्रान्ति का रास्ता है। यह शहीदे आज़म भगतसिंह का रास्ता है। क्रान्ति ही नाउम्मीदों की उम्मीद है। रसातल के अंधेरे में जीने वालों की ज़िन्दगी की रोशनी है। मृत्यु के अवसाद को तोड़ने वाला उत्सव का आह्लाद है। "आह्वान" इस तूफान का मुक्त कंठ से आह्वान करता है। "आह्वान" इस तूफान का आनन्द लेने के लिए सभी युवा तूफानी पितरेल पक्षियों का न्यौता देता है।

पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूंजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की ज़िन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा-व्यथा के अंधेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुखों के सागर में ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मीनारें, संसद में पूंजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों के बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, संवेदनाओं को कुंद करती विकृत-बीमार साम्राज्यवादी-पूंजीवादी संस्कृति का धीमा जहर, संचार माध्यमों पर पूंजी की सर्वग्रासी पकड़, दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, बेतहाशा महंगी होती जा रही निरर्थक अनुपयोगी-अवैज्ञानिक शिक्षा, मामूली चिकित्सा के अभाव में मरते लोग – यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठण्डा सत्य है – नंगा सत्य है – पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही 'आह्वान' का निर्भीक उद्घोष है।

# इस अंक में


**अपनी ओर से**

किस चीज का इन्तजार है? और कब तक? दुनिया को तुम्हारी जरूरत है 5-7

**सामयिकी**

गुजरात और उसके बाद 10-11

साम्प्रदायिक फासीवादियों का खतरनाक सामाजिक आधार 12-14

नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली 15-18

**शिक्षा जगत**

बिहार और उत्तरांचल में छात्र असंतोष-भविष्य के संकेत 19-20

एक दलित छात्र की आत्महत्या बेचैन करते सवाल 21

**समाज**

निराशा के अंधेरे में उम्मीदों की मशाल जलानी होगी 22

जिन्दगी की जीत में यकीन की एक हार 23-24

**युवा चिन्तन**

आज के भारत में अलगाव का सवाल 25-29

**विरासत**

सूर्योदय होगा निश्चित ही 30

**साहित्य**

**कहानी:** डिप्टी कलक्टरी: अमरकांत 33-40

**कविता:** अगर तुम युवा हो: शशिप्रकाश 9

नाज़िम हिकमत की दो कविताएं 31-32

**विश्वपटल पर**

मदमत्त साम्राज्यवादी हाथी गहरे दलदल की ओर 41



# आह्वान
## कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष-11, अंक-3, जनवरी-मार्च 2003

सम्पादक मण्डल
मुकुल
कविता
अभिनव
सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
आठ रुपए
वार्षिक
तीस रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय: संस्कृति कुटीर कल्याणपुर, गोरखपुर-273001 फोन 2241922

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं द्वारा आफसेट प्रेस, इलाहीबाग, गोरखपुर से मुद्रित

## भगतसिंह ने कहा

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन – पूंजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।"

## एक अपील

*'आह्वान कैम्पस टाइम्स' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिग एंजेंसियों, पूंजीवादी घरानों, एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता की वैकल्पिक मीडिया सिर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए—हमारी यह दृढ़ मान्यता है। अतः हम अपने सभी पाठकों–शुभचिन्तकों–सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।*

साथियों

डाकदरों में वृद्धि के कारण इस अंक से हम पत्रिका की कीमत छह की जगह आठ रुपये करने को विवश हैं।

हमें विश्वास है आपका सहयोग बना रहेगा।

-सम्पादक

## शिक्षा के प्रति जागरूक करें

'आहवान' के जनवरी-मार्च 2002 अंक को पढ़कर मैं काफी गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ। मेरे ख्याल से जिन लोगों के हाथों में यह सत्ता है, वे हमारे मुकाबले चार गुना आगे की सोचते हैं। हमारे कई लोग केवल रोटी की सोच तक ही सीमित हैं। इससे ज्यादा कुछ वे सोच नहीं पाते, हालात उनके खिलाफ हैं। इसलिए मेरा मानना है कि पहले शिक्षा के प्रति जागरूक करें और फिर आगे सोचें। भारत रत्न डॉ0 अम्बेडकर का कहना था, ''शिक्षित बनो, एक बनो, संघर्ष करो।'' मैं चाहता हूँ कि लोगों में केवल एक सोच हो कि मैं शिक्षित बनूं, क्योंकि इससे सोच में क्रान्ति आयेगी। मैं सोच या विचार की क्रान्ति ''जनक्रान्ति'' को सबसे बड़ी क्रान्ति मानता हूँ।

● मनीष कुमार पासवान, गोरखपुर

## अपने हक के लिए आगे आओ !

सर्वप्रथम 'आहवान' जैसी बेलौस त्रैमासिक पत्रिका निकालने हेतु हार्दिक बधाइयाँ। जनवरी-मार्च 02 अंक में ''क्या तुम भविष्य की आवाज सुन रहे हो ?'' बहुत ही अच्छा लगा। पत्रिका वस्तुतः शहीद-ए-आजम भगतसिंह के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। वर्तमान देश में व्याप्त अराजकता, लूट-पाट, तानाशाही तथा तमाम अमानुषिक कृत्यों को रोकने के लिए 'आहवान' ने जो आवाज दी है, वह काफी प्रशंसनीय है। हमें संगठित होना है और तबाह कर देना है उन तानाशाहियों को जो देश में गरीबों, असहायों तथा नौजवानों का शोषण कर रही हैं। हमें आगे आना है अपने हक के लिए, अपनी आजादी के लिए जो पचास वर्ष बाद भी हमें हासिल नहीं है। हमें भगतसिंह के सपनों को पूरा करना है।

● निगम प्रकाश कश्यप, मिर्जापुर

## मैं और हम

प्रत्येक चिन्तनशील युवक की ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही है कि अपना देश विकास के पथ का अधिग्रहण कर विकसित बने। अर्थात् एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण जिसके छः स्तम्भ हों प्रत्येक को रोजगार, कपड़ा, रोटी, मकान शिक्षा, न्याय अर्थात् राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का समुचित विकास और इन सभी सुविधाओं से वंचित उस सर्वहारा वर्ग तक इन सुविधाओं को पहुँचाना। जो उनके अधिकार क्षेत्र में आते हुये भी उनसे इस कारण दूर हैं कि कुछ पूंजीवादी मानसिकता के लोगों द्वारा उनकी सुविधाओं का अधिग्रहण कर लिया गया है।

आज इसी चिन्तनशील युवा समाज द्वारा देश का विकास एक सकारात्मक दिशा में जा सकता है जिससे देश का विकास मानवता के मूल्यों पर हो सकता है। केवल भावना होने से या चिन्तन कर लेने मात्र से कार्य का सम्पादन हो जायेगा, यह यर्थाथता से उसी प्रकार परे है जिस प्रकार, चाँद प्राप्ति की बाल कल्पना। इसके लिए इस विचारशील युवा समाज को सर्वप्रथम अपने 'मैं' के चिन्तन को छोड़कर 'हम' के चिन्तन का विकास करना होगा। क्योंकि देशभक्ति की वह भावना, जिसकी नींव भगत सिंह, चन्द्रशेखर, अशफाक उल्ला खां, विवेकानन्द, सुभाषचन्द्र, राम प्रसाद बिस्मिल या उन अनगिनत अनजाने राष्ट्र के विकास के लिए अपने जीवन का प्रत्येक पल लगा देने वाले व्यक्तियों द्वारा रखी गयी 'मैं' की भावना के द्वारा तिरोहित हो जाती है। आज हमें क्रान्तिकारियों द्वारा प्रतिपादित उस पवित्र भावना को ही आगे बढ़ाना है और इस संघर्ष को एक नया मोड़ देकर सफलता का अभिनन्दन करना है।

अतः 'हम' और 'मैं' में अन्तर इस प्रकार बताया जा सकता है कि जन्म के लिए मेरा सम्बन्ध मेरे माता-पिता से है किन्तु जिस दिन मेरा नामकरण हुआ मैं समाज का अंग बन गया। मेरी बोलने की शक्ति विकसित हुई तो भाषा भी मुझे समाज से मिली। मातृभाषा प्राप्त हुई। बड़े हुए तो सभ्य बने इसका सम्बन्ध भी समाज से है, यानि समाज ने शिक्षा देकर बड़ा किया। यहाँ तक कि सुःख-दुःख की अनुभूतियाँ भी समाज ने दी अर्थात् प्रत्येक अवसर पर जीवन के प्रत्येक पल में समाज किसी न किसी रूप में उपस्थित रहा। इस समाज के साथ इतना गहरा सम्बन्ध स्थापित हो चुका है कि समाज के प्रति कर्तव्यों के निर्वहन से किसी भी प्रकार बचना एक प्रकार से उन भावनाओं का अनादर करना है, जो महान क्रान्तिकारियों द्वारा समाज को प्रदत्त की गयी।

अर्थात 'मैं' का चिन्तन केवल स्वंय का विकास दूसरों के दुःख की कीमत पर (पूंजीवादी अवधारणा) हमारी उस सम्पूर्ण भावना को तुरन्त ही तिरोहित कर देती है, जो इस देश तथा यहां की सम्पूर्ण जनता के विकास के लिये उत्तरदायी है अर्थात् वास्तविक राष्ट्रीय विकास, सामाजिक विकास।

अतः आज जब हम इस महान अवधारणा को यथार्थता में परिवर्तित करने के लिये एक क्रान्ति करने के लिये एकत्र हो रहे हैं, जो इस देश से समाज से अन्याय, भ्रष्टाचार और विषमता को मिटा दें। सबको काम का अधिकार

(पेज 8 पर जारी)

# किस चीज़ का इन्तज़ार है? और कब तक? दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है!

## अपनी ओर से

घुटन और बेचैन सुगबुगाहटों से भरे हुए, नयी शताब्दी के दो उनींदे वर्ष बीत चुके हैं। पूरी पृथ्वी पर, यहां-वहां पूंजी की विनाशकारी रक्तचूसक जकड़बन्दी के विरुद्ध विद्रोहों, संघर्षों और जन आन्दोलनों का सिलसिला गत दो वर्षों के दौरान भी, पहले के वर्षों की तरह निरन्तर जारी रहा है, लेकिन इस निरन्तरता में कोई ऐसी गुणात्मक उछाल नहीं आई है जिससे इतिहास का गतिरोध टूटने का कोई महत्वपूर्ण संकेत मिला हो। विश्व-ऐतिहासिक स्तर पर विपर्यय (रिवर्सल) के बाद का गतिरोध अभी कायम है। क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर अभी हावी है।

1960 के दशक में अफ्रीकी देशों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों का जनज्वार पूरी दुनिया को हिला रहा था। आज वहीं अफ्रीका शीतनिद्रा की सी स्थिति में है। लातिन अमेरिका की यह विशेषता है कि वह कभी निश्चल नहीं होता। यह विशेषता शायद उस इतिहास की देन है जिसने उपनिवेशवादियों के सर्वाधिक बर्बर कत्लेआम से लेकर नवउपनिवेशवादी दौर के सर्वाधिक जालिम तानाशाहों की हुकूमतें देखी हैं। आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर में उदारीकरण की नीतियों की पहली प्रयोगशाला लातिन अमेरिका रहा है, और इस महाविनाश के खिलाफ महाबली अमेरिका के ऐन पिछवाड़े इस पूरे महादेश के मजदूर, किसान और छात्र-युवा लगातार लड़ रहे हैं। लेकिन ये सभी संघर्ष पुराने दौर के संघर्षों की निरन्तरता में ही हो रहे हैं। दुनिया के हालात में, दुश्मन की राजनीति और अर्थनीति में जो अहम बदलाव विगत लगभग डेढ़-दो दशकों के दौरान आये हैं, उनके कारगर प्रतिरोध की नई सांगोपांग रणनीति लातिन अमेरिकी जन-उभारों, विद्रोहों और प्रतिरोध संघर्षों में अभी विकसित नहीं हो सकी है। अरब विश्व में बारूद की ढेरी एकत्र हो चुकी है। इराक और फिलिस्तीन की जनता के साथ पूरी अरब जनता खड़ी है। यह पूरा क्षेत्र साम्राज्यवादी दुनिया के अन्तरविरोधों की गांठ बना हुका हैं आने वाले दिनों में अमेरिका और पूरे पश्चिम ? की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध अरब जनता के आक्रोश का प्रचण्ड विस्फोट साम्राज्यवाद को गंभीर रूप से संकटग्रस्त और कमज़ोर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। लेकिन अरब दुनिया में आने वाले वर्षों में जो होने वाला है, वह मुख्यत: राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के दौर के छूटे हुए कुछ कार्यभारों को पूरा करने की प्रक्रिया ही होगी। साम्राज्यवाद के नये दौर के अन्तरविरोध उसके बाद ही वहां तीखे होकर एजेण्ड पर आ सकेंगे। इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि पूंजी के विरुद्ध संघर्ष की अगुवाई करने वाले मजदूर वर्ग का हरावल दस्ता फिलहाल अरब जगत में राजनीतिक-सांगठनिक दृष्टि से, अपेक्षाकृत, काफी पिछड़ा हुआ है।

शेष एशिया की स्थिति आज काफी मिली-जुली है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में भारी किसान आबादी ने संगठित होकर चीन, वियतनाम, कोरिया, कम्पूचिया आदि देशों में साम्राज्यवाद, उसके पुछल्ले देशी पूंजीपतियों और सामन्तों को आधी सदी पहले जबर्दस्त शिकस्त दी थी और समाजवाद की दिशा में लम्बे डग भरे थे। लेकिन वहां पूंजीवाद की बहाली के बाद आज खुले बाजार की नीतियों का स्वर्ग-नर्क (मुट्ठी भर के लिए स्वर्ग और शेष के लिए नर्क) रचने का काम अन्धाधुन्ध जारी है। अमेरिकी गुण्डागर्दी के खिलाफ उत्तर कोरिया का डटे होना एक सकारात्मक बात है, लेकिन यह मानना होगा कि समाजवादी प्रयोगों की प्रगति वहां कभी की रुक चुकी है। आगे आशा की जा सकती है कि अतीत में समाजवादी प्रयोग की नयी दिशा उद्घाटित करने वाले चीन देश में भूमण्डलीकरण के नये अन्तरविरोधों के उग्र होने के साथ ही (और यह प्रक्रिया जारी है), आज जारी जनान्दोलनों और विद्रोहों के बीच से एक नई क्रान्ति की धारा फूटेगी और अतीत की विकास यात्रा को आगे बढ़ानेवाला हरावल दस्ता फिर से संगठित होगा। जो जनता समाजवाद के उन्नत प्रयोग देख चुकी है, वह फिर से अपनी उस विरासत को पुनर्जीवित करके अवश्य उठ खड़ी होगी, लेकिन स्थितियों के अध्ययन से यह कहा जा सकता है वहां अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण का निर्माण निकट भविष्य की चीज नहीं है। इण्डोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका और पाकिस्तान जैसे सापेक्षत: विकसित उत्पादक शक्तियों वाले देशों से लेकर वर्मा, कम्पूचिया, लाओस जैसे पिछड़े, विपन्न देशों तक में साम्राज्यवाद और देशी पूंजीपतियों की सत्ता के विरुद्ध अन्तरविरोध तीखे हो रहे हैं, लेकिन किसी आमूलचूल राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन के लिए, अलग-अलग इतिहासजन्य कारणों से इन देशों में कोई वास्तविक नेतृत्वकारी केन्द्र अभी संगठित होने की प्रारम्भिक अवस्था में भी नहीं है। फिलिस्तीन में क्रान्तिकारी जन सेना विगत लगभग आधी सदी से सशस्त्र संघर्ष चला रही है, लेकिन समस्या यह है कि हालात में आये बुनियादी बदलावों पर गौर करने के बजाय वहां के सर्वहारा क्रान्तिकारी अभी भी अतीत की क्रान्तियों (विशेषकर चीनी क्रान्ति) की रणनीति एवं रास्ते को ही लागू करने की कोशिश कर रहे हैं और यही उनके संघर्ष के ठहराव का बुनियादी कारण है। नेपाल में दुर्द्धर्ष, अप्रतिरोध्य क्रान्तिकारी जनयुद्ध अपने देश की परिस्थितियों के हिसाब से मौलिक प्रयोग करता हुआ विगत सात वर्षों से लगातार आगे डग भर रहा है और साम्राज्यवादी देशों से लेकर पड़ोसी भारत की सरकार की तमाम मदद के बावजूद नेपाली शासक वर्ग उसे

कुचलने में विफल रहा है। आज विश्वव्यापी प्रतिक्रिया के माहौल में, खासकर पेरू के क्रान्तिकारी संघर्ष के पीछे हटने के बाद, नेपाल की मेहनतकश जनता के इस संघर्ष की विशेष अहमियत है। लेकिन नेपाल एक बेहद पिछड़ी उत्पादक शक्तियों वाला छोटा देश है। वह साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी क्रान्ति (राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति) को अंजाम दे रहा है। आज अफ्रीका और सब सहारा के कुछ बेहद पिछड़े, छोटे, विपन्न देशों को छोड़कर, एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के अधिकांश देश इस दौर को पार कर चुके हैं। इन महाद्वीपों के अधिकांश देश आज, पिछड़े हुए ही सही, लेकिन पूंजीवादी देश बन चुके हैं। यहां की व्यापक जनता को, भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में, साम्राज्यवाद और अपने देश के सत्तारूढ़ पूंजीपतियों के विरुद्ध एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति करनी है। यह नयी क्रान्ति रूस की अक्टूबर क्रान्ति और चीनी क्रान्ति की वारिस होगी, उनकी अगली कड़ी होगी और पूरी दुनिया में पूंजी और श्रम के बीच के महासमर का अगला चक्र इन नयी समाजवादी क्रान्तियों की धारा के गति पकड़ने के बाद ही शुरू हो सकेगा। तब तक का समय इस महासमर के विगत चक्र और भावी चक्र के बीच का संक्रमण-काल ही होगा, जिस दौरान, मुमकिन है कि अतीत के कुछ छूटे हुए कार्यभार निपटाये जाते रहें। इस दृष्टि से नेपाल की क्रान्ति अपने ऐतिहासिक महत्व के बावजूद, प्रवृत्तिनिर्धारक 'ट्रेण्ड सेटर' और नवपथान्वेषी 'पाथब्रेकिंग' नहीं हो सकती।

तीसरी दुनिया (एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका) के जिन भूतपूर्व औपनिवेशक देशों में, (1) चार-पांच दशक पहले सत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथ में आयी और साम्राज्यवादी लूट के साथ समझौता करके उसने वहां (एक रुग्ण, पिछड़ा और विकलांग किस्म का ही सही, लेकिन) पूंजीवादी रूपान्तरण का काम किया, यानी जो आज पिछड़े हुए पूंजीवादी देश बन चुके हैं; (2) पश्चिम के देशों से काफी पीछे होने और साम्राज्यवादी शोषण के बावजूद जिन देशों में उद्योगों का एक आधारभूत ढांचा विकसित हुआ है; (3) जिनके पास खाने लायक अनाज पैदा करने की जमीन और कच्चे माल के पर्याप्त स्रोत हैं यानी जिनकी अर्थव्यवस्था वैविध्यपूर्ण (डायवर्सिफायड) है; (4) जो देश क्षेत्रफल और आबादी की दृष्टि से भी यदि बहुत बड़े नहीं तो बहुत छोटे भी नहीं हैं, उन्हीं देशों में नयी शताब्दी में 'ट्रेण्ड' सेट करने वाली नयी क्रान्तियों की सम्भावना वस्तुगत रूप से अधिक हो सकती है।

यह आकलन अपने आप में अलग से एक विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन ऐसे देशों की अगली पंक्ति में, निश्चय ही, भारत का भी स्थान है। विश्व पूंजीवाद के खिलाफ असंतोष तो पूरी दुनिया में, यहां तक कि विकसित देशों की जनता में भी सुलग रहा है, लेकिन दबाव सबसे अधिक पिछड़े और गरीब देशों पर है। ये ही देश आज भी साम्राज्यवाद की कमजोर कड़ी हैं और दुनिया को बदलने वाले भावी विस्फोटों की जमीन भी ऐसे ही देशों में तैयार हो रही है जहां लूटने और एकाधिकार जमाने के लिए प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा, श्रम-सम्पदा और बौद्धिक सम्पदा है।

भारत एक ऐसा ही देश है। जहां उदारीकरण-निजीकरण के दौर ने पूंजीवाद की सारी बुराइयों और आपदाओं को एकदम नग्नतम और वीभत्सतम रूप में उजागर कर दिया हैं। पूंजीवादी विकास का रास्ता आधी सदी बाद एक अंधी सुरंग के छोर पर जा पहुंचा है। आम जनता के दु:खों और गरीबी के सागर में समृद्धि के टापुओं पर विलासिता की मीनारें गगनचुम्बी होती जा रही हैं। कारों, मोटरसायकिलों, फ्रिजों, एयरकण्डीशनरों और तमाम विलासिता के सामानों से बाजार पटते जा रहे हैं। दूसरी ओर, भूख और कुपोषण से मौतें हो रही हैं। दवा-इलाज की बुनियादी सुविधाएं भी आम लोगों को नसीब नहीं। देश की आबादी का पांचवा हिस्सा बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी का शिकार है। हर वर्ष पूंजी की मार से त्रस्त करोड़ो छोटे-मंझोले किसान अपनी जगह-जमीन से उजड़कर उजरती गुलामों की कतार में शामिल हो रहे हैं। मजदूरों को पाशविक स्थितियों से बारह-बारह घण्टे खटने के बाद भी परिवार का पेट भरने लायक दिहाड़ी नहीं मिलती। 95 प्रतिशत से भी अधिक शहरी देहाती मजदूर दिहाड़ी या ठेके पर या अस्थायी मजदूर के रूप में खटते हैं। पहले संगठित संघर्षों से जो भी हक़ उन्होंने हासिल किये थे, एक-एक करके उनका अस्सी प्रतिशत हिस्सा छीना जा चुका है। अफसरों, डाक्टरों, इंजीनियरों और ऊंचे ओहदों वाले कुछ बुद्धिजीवियों को छोड़कर आम मध्यवर्ग का बड़ा हिस्सा भी महंगाई और बेरोजगारी से त्रस्त है। उच्च शिक्षा और तकनीकी- व्यावसायिक शिक्षा के दरवाजे तो आम घरों के नौजवानों के लिए लगभग बन्द हो चुके हैं। फीसें बढ़ाने, सीटें घटाने और शिक्षा संस्थानों को पूंजीपति घरानों को सौंपते जाने का सिलसिला लगातार जारी है। प्राथमिक-माध्यमिक स्तर पर अमीर-गरीब के बीच का बंटवारा इतना तीखा पहले कभी नहीं था।

ये हालात जिन आर्थिक नीतियों के परिणाम हैं, उन पर शासक वर्गों की सभी पार्टियों की आम सहमति हैं। विरोध का जुबानी जमाखर्च करती हुई चुनावी वामपंथी पार्टियां भी, इसी रास्ते का राही बन चुकी हैं। दरअसल, समाजवाद के मुखौटे की अब कोई गुंजाइश ही नहीं है। भारत के पूंजीपति वर्ग ने और अधिक मुनाफा निचोड़ने के लिए पूंजी और तकनोलॉजी के लिए साम्राज्यवादियों के आगे घुटने टेक दिये हैं और पूरे देश को साम्राज्यवादी लूट का खुला चारागाह बना दिया है। यही आर्थिक नवउपनिवेशवाद का सारतत्व है। इसी अर्थनीति के अनुरूप पूंजीवादी राजनीति ने भी रूप बदला है। पूंजीवादी जनवाद का सारतत्व- पूंजीपति वर्ग की तानाशाही, एकदम सामने आता जा रहा है। एक के बाद एक काले कानून बनाकर जनता के रहे-सहे अधिकारों को हड़पा जा चुका है। राज्यसत्ता एक नग्न आतंकवादी मशीनरी का रूप लेती जा रही है। पूंजीवाद के चतुर्दिक संकट और पूंजीपति वर्ग के ज्यादा से ज्यादा निरंकुश दमनकारी होते जाने की ही एक प्रातिनिधिक अभिव्यक्ति भारत में (और पूरी दुनिया में भी) फासीवादी उभार के रूप में सामने आ रही है।

आज एक सुधरे हुए, "शरीफ" पूंजीवाद की उम्मीद महज आकाश-कुसुम की अभिलाषा ही हो सकती है। इतिहास की गति को पीछे नहीं

मोड़ा जा सकता। अतीत में समाधान या विकल्प की खोज व्यर्थ है। विकल्प की तलाश, आगे भविष्य की ओर देखते हुए की जानी चाहिए। दुनिया को आज "बेहतर" पूंजीवाद नहीं, बल्कि पूंजीवाद का विकल्प चाहिए। आज की दुनिया की केन्द्रीय समस्या यह है कि पूंजीवाद अपनी विलम्बित आयु जी रहा है। समस्या यह है कि जिसे इतिहास की कूड़ेदानी में होन चाहिए, वह हमारी छाती पर सवार बैठा है। समस्या सिर्फ एक है और रास्ता भी एक ही है। मानवता को आज पूंजीवादी राज, समाज और संस्कृति का विकल्प चाहिए।

और हम यह जोर देकर कहना चाहते हैं कि विज्ञान और मानव-चेतना की हजारों वर्षों की महती प्रगति के बाद, प्रकृति और मनुष्य को मुनाफे के हवस से तबाह करती और युद्ध, विनाश एवं भुखमरी का कहर बरपा करती एक मानवद्रोही पूंजीवादी व्यवस्था मानव इतिहास की आखिरी मंजिल नहीं है। यह इतिहास का अंत नहीं है। समाजवाद की पराजय के हवाले दे-देकर पूंजीवाद के भाड़े के टट्टू लोगों को यह विश्वास दिलाने की लगातार कोशिश करते हैं कि कोई दूसरा विकल्प है ही नहीं। लेकिन जो लूट की चक्की में पिस रहे हैं, जिनके सामने कोई रास्ता नहीं, जो देखते हैं कि काम करने वाली भारी आबादी की हड्डियों से मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वर्ग की सीढ़ियां तैयार की जाती हैं, जो देखते हैं कि सारी प्राकृतिक सम्पदा और मानवीय क्षमता की मौजूदगी के बावजूद मुनाफे के लिए उत्पादन के नियम, और उत्पादन के सभी साधनों पर थोड़े से लोगों की निजी इजारेदारी के कारण, बहुसंख्यक लोगों का जीना मुहाल है, वे चुप नहीं बैठेंगे। वे सामूहिक आत्महत्या नहीं करेंगे। वे पशु नहीं बन जायेंगे। वे छिटपुट विद्रोहों के द्वारा यह साबित भी कर रहे हैं। उनका अगला कदम होगा योजनाबद्ध ढंग से, सुविचारित क्रान्ति की राह निकालना और नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना।

बीसवीं शताब्दी की समाजवादी क्रान्तियों ने पूंजीवाद का विकल्प प्रस्तुत भी किया था। वे प्रारम्भिक प्रयोग थीं। उनकी पराजय कोई अप्रत्याशित नहीं थी। उन्हें प्रारम्भिक प्रयोगों की विफलता मात्र ही माना जा सकता है। अतीत में भी ऐसा हुआ है कि क्रान्तियों के प्रथम चक्र विफल हुए हैं। जड़ता की शक्तियों पर प्रगति की शक्तियां पहले ही चक्र में विजयी नहीं होतीं। बीसवीं शताब्दी की महान क्रान्तियों के प्रयोगों से सबक लेकर और पूंजीवाद के नये तौर-तरीकों-तरकीबों-तिकड़मों का अध्ययन करके इस सदी में नई क्रान्तियों की राह निकाली जायेगी। और जैसा कि हमने ऊपर कहा है, भारत इस सदी की नयी क्रान्ति की एक सम्भावनासम्पन्न प्रयोग-भूमि है। अब जरूरत है उन साहसी प्रयोगकर्ताओं की, जो समाज को बदलने के विज्ञान को जनता को जागृत और संगठित करने का उपकरण बनायेंगे, जो जीवन बदलने का हथियार जीवन की जानकारी से गढ़ेंगे।

जरूरत है ऐसे बहादुर, विचारसम्पन्न नौजवानों की, जो इस काम को अंजाम देने के लिए आगे आयें। यह तो सभी महसूस करते हैं कि उनके मां-बाप को उनकी जरूरत है। जो लोग यह महसूस करते हैं कि समाज को उनकी जरूरत है, वे ही इतिहास बदलने के औजार गढ़ते हैं और परिवर्तनकामी जनता के हिरावल बनते हैं। आज एक बार फिर सब कुछ नये सिरे से शुरू करना है और इसके लिए कोई मसीहा धरती पर नहीं आयेगा। बदलाव की तैयारी आम जनता के कुछ बहादुर युवा सपूत ही शुरू करेंगे। ऐसे ही लोग सच्चे युवा हैं। उनकी संख्या ही बहुसंख्या है। पर अभी वे निराशा या 'क्या करें क्या न करें' की दुविधाग्रस्त मानसिकता से ग्रस्त हैं। सही है, कि हार के समय थोड़ी निराशा आ जाती है। लेकिन कब तक मेरे भाई? अब तो उबरने का समय आ चुका है? इसके संकेतों को पहचानने की कोशिश तो करो! क्या हजार ऐसे कारण नहीं है कि हम विद्रोह करें और क्या इनमें से चन्द एक ही काफी नहीं हैं कि हम अपनी तैयारी अभी से शुरू कर दें? क्या एकमात्र रास्ता यही नहीं बचा है कि हम अन्याय के विरुद्ध लड़ें और छिटपुट न लड़ें बल्कि अपनी लड़ाई को सामाजिक क्रान्ति की सीढ़िया बना दें।

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता से कुछ पंक्तियां उधार लेकर हम इस देश की आम जनता के सभी बहादुर, इन्साफपसन्द, स्वाभिमानी, संवेदनशील स्वप्नद्रष्टा नौजवान बेटों से पूछना चाहते हैं।

*किस चीज़ का इन्तज़ार है?*
*और कब तक?*
*दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है।*

(क्रमशः)

**अगले अंक में: हमारी राह की बाधाएं और चुनौतियां क्या हैं?**
**भावी नयी क्रान्ति में नया क्या होगा?**
**छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहां से करें?**

( पेज 4 से आगे )

विश्राम का अधिकार, मनोरंजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार दे सके तथा अक्षम लोगों का भरण पोषण कर सके। तब हमें 'हम' की अवधारणा में बंधना पड़ेगा और 'मैं' (पूंजीवादी मानसिकता) की अवधारणा से बाहर निकलना होगा। एक ऐसे चिन्तनशील युवकों के संगठन में बंधना होगा जहाँ 'हम' के द्वारा कार्यों का सिद्धान्तों का, प्रतिपादन और सम्पादन हो। अर्थात् प्रत्येक युवक को सशक्त बनाना होगा, उसके बौद्धिक स्तर को उठाना होगा उन्हें संगठन से जोड़ना होगा उन्हें अधिकारों के लिये लड़ना सिखाना होगा, अन्याय का प्रतिकार करें ऐसी क्षमता और भावना उनमें विकसित करनी होगी, भरनी होगी; स्वयं में भरनी होगी, विकसित करनी होगी।

आज हम ही भविष्य हैं, वर्तमान हैं हमारे द्वारा किया गया सामूहिक कार्य ही इस देश की सुप्त पड़ी जनता को जाग्रत कर सकती हैं ; जिनकी संवेदनायें हमारे आगे बढ़ने के लिये ढाल, अधिकार की भावना शस्त्र का कार्य करेगी और उनका साथ हमारे आन्दोलन को सफलता प्रदान करेगी। हम सभी साथ में चलकर, इस क्रान्ति को आगे बढ़ायेंगे जिसका नेतृत्व सामूहिक रूप में होगा। यहां पर कोई यह नहीं कहेगा कि तुम संघर्ष करो हम तुम्हारे साथ हैं, यहाँ सभी संघर्ष करेंगे और सभी साथ रहेंगे। इस सामूहिक भावना के द्वारा तथा उसको कार्य रूप में परिणित करके ही हम देश के ऋण से उऋण होंगे समाज के प्रति अपने दायित्वों की पूर्ति कर सकेंगे। यह क्रांति भ्रष्टाचार के खिलाफ, अन्याय के खिलाफ, अधिकार के प्रति, रोजगार के प्रति होगी; जिसका लक्ष्य केवल सफलता प्राप्त करना होगा।

अत: आज सम्पूर्ण युवा समाज से यह आहवान करता हूँ कि वो 'मैं' के चिन्तन को छोड़कर 'हम' के चिन्तन को आत्मसात करके संगठन को सक्रियता प्रदान करें, क्रान्ति के अग्रदूत बनें अधिकार की लड़ाई लड़े और वर्तमान समाज रचना, शासन तंत्र को बदलकर एक समतामूलक समाज का निर्माण करें जिससे सभी वर्गों को उनके जीने के लिये, आगे बढ़ने के लिये एक शक्तिशाली आधार मिले।

● सौरभ त्रिपाठी, नरही, लखनऊ

## बहता है लहू.....

बहता है लहू देखिए मजहब के नाम पर,
हैवानियत का जोर है इंसान बेखबर।
आओ चलें हम साथ लें उनकी भी खबर,
दहशत के माहौल में छोड़े हुए जो घर।
उजड़ी हुई हैं बस्तियाँ वीरान है शहर,
बच्चे हैं भूखे देखिए राशन नहीं है घर।
करते हैं सारी जिन्दगी फुटपाथ पर बसर,
खुशियाँ मना रहे हैं वो लाशों के सौदागर।
इंसानियत के दुश्मनों को जानना होगा,
जानना ही नहीं पहचानना होगा।
आओ हमारे साथ बन जाओ हम सफर,
लुटेरे हुक्मरानों की हम लेंगे फिर खबर।
ये जंग है आजादी की मुश्किल है ये सफर,
आजादी के दीवानों की अन्तिम यही डगर।

● पुखराज निराला, मण्डीधनौरा( जे०पी०नगर )

---

देश हमारा, धरती अपनी, वे सच कहते हैं।
तब ही हम नीली छतरी के नीचे रहते हैं।
डाकू बैठ गये पहरे पर दीवारों का क्या,
घर के लुट जाने का हरदम खतरा सहते हैं।
दिखते तो हैं अच्छे लेकिन वीर शहीदों का,
कफन उन्होंने बेच दिया है साथी कहते हैं।
कितना ढूँढ़ा मगर एक भी सज्जन नहीं मिला,
लगता है इस बस्ती में कुछ नेता रहते हैं।
प्यासा भी ढूँढ़ेगा शीतल जल के स्रोत कहीं,
यों जग में गंदे नाले कितने ही बहते हैं।
मेरी खातिर 'माया ठगनी' अपने लिए नहीं,
इसी लिए वे महलों-सी कुटिया में रहते हैं।

● दीप चन्द्र निर्मोही, पानीपत

## मुझे माफ करना

ऐ मेरी कविता मुझे माफ करना।
मैंने न सोचा था ऐसा भी होगा।।
सुना तो तुझे ये तेरा श्रम लेकिन।
समझा नहीं वो तेरा सार कविता।।
अच्छी लगी हो उसे ध्वनि तो क्या।
समझा तुझे बस केवल एक कविता।।
तूँ खुश है कि उसने तुझे है सुना,
रच कर तुझे मन दुखी है मेरा,
मन को तूँ उसके नहीं तार पायी,
हृदय का तूँ उसके नहीं पार पायी,
हृदय श्रम का था मलिन, है मलिन,
और मन की मेरे तूँ सरित-सार-सरिता।।
मैंने रचा था तुझे इस लिए की,
तूँ मनुज के मनों का उद्धार होगी,
उठेगा मनुज सुन तरंगो को तेरी,
समझकर तेरा गूढ़ उछलेगा फिर वो,
तोड़ देगा मन: बेड़ियों इन्द्रियों को,
उठ खड़ा होगा लंगड़ा कटे पैर पर फिर,
वाणी में उसके वो उद्गार होगा,
झुक जाएंगी फिर निगाहें युवा की,
और मन में विचरित एकता भाव होगा,
फिर लुटती हुई न वो औरत दिखेगी,
न लुटता हुआ ये मेरा देश कविता।।
मुझे दुख है कि अब ऐसा न होगा
मेरा मन सशंकित कि अब क्या-क्या होगा
यह मेरा दोष है कि तेरा दोष कविता
या इसमें है दुर्भाग्य फिर देश का
मुझे रोना आता है तुझ पर ऐ कविता
मुझे रोना आता है मुझ पर ऐ कविता
नहीं, अब नहीं, अब नहीं मैं लिखूंगा
लिखूंगा कभी फिर न यूं स्वच्छ कविता।।

● अतुल सिंह 'अजान',आजमगढ़

## जेल में शहादत दिवस मनाया

सेण्ट्रल जेल बक्सर में बन्द क्रान्तिकारी साथियों की तरफ से हार्दिक लाल सलाम स्वीकार करें। 'आहवान' समय पर मिल गया। आभारी हैं। आपको यह जानकर खुशी होगी कि लम्बी समयावधि बाद केन्द्रीय कारागार, बक्सर में कुछ नौजवानों की पहल पर शहादत दिवस मनाया गया। 23 मार्च को शहादत दिवस मनाये जाने वाले स्थान को साफ-सुथरा कर कागज की रंगीन झंडियों से सजाया गया। साथ ही भगत सिंह की तस्वीर को आकर्षक ढंग से सजाया गया था। नौजवान संकल्प सभा के बैनर तले उपस्थित लगभग डेढ़ सौ बन्दियों द्वारा दो मिनट का मौन रख कर श्रद्धाँजलि अर्पित की गयी। इसके बाद पुष्पाँजलि दी गयी। मैंने शहीद गीत गाया तथा उनके जीवन पर विस्तारपूर्वक विचार रखे। सभाध्यक्ष मुझे चुना गया था, साथी राजू द्वारा मंच संचालन किया गया। साथी भान, सुवाष, शंकर, महेन्द्र, जिउत के द्वारा प्रस्तुत क्रान्तिकारी गीतों को बंदियों ने सराहा, क्योंकि ये जीवन से जुड़े हुए गीत थे। वक्ताओं द्वारा संकल्प सभा में इस बात पर बल दिया गया कि वर्तमान व्यवस्था को धवस्त कर भगत सिंह के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए, सच्ची आजादी के लिए उनके द्वारा दिखाये गये मार्ग पर चलना होगा। मेरे द्वारा प्रस्तुत वक्तव्य के अनुसार साम्राज्यवादियों के शोषण शासन के नये तरीकों के मुकाबले के लिए हमें नई जनवादी क्रान्ति की राहों पर आगे बढ़ना होगा।

● सुरेन्द्र पासवान, सेण्ट्रल जेल, बक्सर

# अगर तुम युवा हो!

शशि प्रकाश

चलना होगा एक बार फिर
बीहड़, कठिन, जोखिम भरी सुदूर यात्रा पर,
पहुंचना होगा उन ध्रुवान्तों तक
जहां प्रतीक्षा है हिम शैलों को
आतुर हृदय और सक्रिय विचारों के ताप की।
भरोसा करना होगा एक बार फिर
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर।
उधर रहस्यमय जंगल के किनारे
निचाट मैदान के अंधेरे छोर पर
छिटक रही हैं जहां नीली चिंगारियां
वहां जल उठा था कभी कोई हृदय राहों को रौशन करता हुआ।
उन राहों को ढूंढ़ निकालना होगा।
और आगे ले जाना होगा
विद्रोह से प्रज्वलित हृदय लिये हाथों में
सिर से ऊपर उठाये हुए,
पहुंचना होगा वहां तक
जहां समय टपकता रहता है
आकाश के अंधेरे से बूंद-बूंद
तड़ित उजाला बन।
जहां नीली जादुई झील में
प्रतिपल कांपता रहता अरुण कमल एक,
वहां पहुंचने के लिए
अब महज अभिव्यक्ति के ही नहीं
विद्रोह के सारे खतरे उठाने होंगे,
अगर तुम युवा हो!

# गुजरात और उसके बाद

## कविता

गुजरात के चुनाव नतीजों से उन लोगों को निश्चित ही धक्का लगा होगा जो अपनी आदर्शवादी सोच के चलते यह मानने को कतई तैयार नहीं थे कि गांधी की धरती पर रहने वाली हिन्दू जनता का मानस किसी भी सूरत में इतना जहरीला नहीं बनाया जा सकता कि वह मुसलमानों के नरसंहार के मुख्य हत्यारे नरेन्द्र मोदी को दुबारा सत्ता में पहुंचा दे। वे लोग भी जरूरत हतप्रभ हुए होंगे जो कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता के व्यामोह से बाहर निकलने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन 'हिन्दुत्व की प्रयोगशाला' में लम्बे समय से जिस निर्विघ्न ढंग से प्रयोग चल रहा था उसे देखते हुए वास्तव में ऐसा कोई भी कारण सामने नहीं था जिसके आधार पर यह उम्मीद पाली जाती कि प्रयोग सफल नहीं होगा।

संघ परिवार के साम्प्रदायिक फासीवाद अभियान का मुकाबला किसी भी चुनावी जोड़-तोड़ के सहारे करने की बात सोचना आत्मघाती मुगालते में जीना होगा। लेकिन 'गुजरात प्रयोग' की सफलता के बाद भी ऐसे धर्मनिरपेक्ष-प्रगतिशीलों की कमी नहीं हैं जो गुजरात में भाजपा के खिलाफ संसदीय विपक्षी दलों द्वारा एकजुट चुनौती न दे पाने को कसूरवार ठहरा रहे हैं। दरअसल साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ संसद के भीतर और मीडिया के जरिये हुंकार भरने वाले सी.पी.आई. व सी.पी.एम. जैसी नकली वामपंथी पार्टियों के नेता इतने सुविधापरस्त हो चुके हैं कि उनसे संसदीय राजनीति की चौहद्दी को तोड़कर मेहनतकश अवाम को संगठित करने की जमीनी कार्रवाईयों में जुटने की उम्मीद ही नहीं की जा सकती। न ही अल्पसंख्यकों के स्वयंभू मसीहा बने मुलायम सिंह यादव और उनकी बिग्रेड से ही यह उम्मीद पाली जा सकती है। रही बात कांग्रेसी धर्मनिरपेक्षता की तो उसकी असलियत पहले ही इतनी बार उजागर हो चुकी है कि उससे रत्तीभर उम्मीद पालना विकल्पहीनता के चलते पैदा हुई थकी-हारी मानसिकता के अलावा कुछ नहीं है।

अगर चुनावी मुकाबले की ही बात करें तो नतीजों के पहले ही कांग्रेस ने अपनी हार तय कर ली थी। ऐसे समय में जबकि मोदी की पलटन मुसलमानों के खून का तिलक लगाये और नरमुण्डों की माला पहने समूचे गुजरात में अट्टहास करता घूम रहा हो तो कांग्रेस ने 'नरम हिन्दुत्व' की लाइन पर चुनाव जीतने की रणनीति बनायी। मोदी के मुकाबले पुराने संघी काडर शंकर सिंह वाघेला को खड़ा किया गया और वघेला भाटी जी महाराज से आशीर्वाद लेकर मोदी का मुकाबला करने निकले। चमचमाते तलवारों-त्रिशूलों-कटारों के मुकाबले गत्ते की तलवारें लेकर कांग्रेसी 'धर्मनिरपेक्ष' फौज चुनावी जंग में कूदी थी। ऐसे में कोई अलग नतीजा भी कैसे सामने आ सकता था। लेकिन कांगेसी 'धर्मनिरपेक्षता' के रणनीतिकार गुजरात से भी सबक सीखने के लिए तैयार नहीं है। 'उदार हिन्दुत्व' भी अन्तोगत्वा 'अनुदार हिन्दुत्व' के रूप में खड़ा होता है। यह नतीजा देखने के बाद भी मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे अपने राज्यों में अपनी जमीन बचाने के लिए कांग्रेसी रामायण मेले आयोजित करवा रहे हैं और विश्व हिन्दू परिषद के अगिया बैताल साधु सन्तों के मुकाबले उदार साधु सन्तों की लाइन लगवा रहे हैं। कांग्रेसी चुनावी रणनीति से ज्यादा यह उसकी 'धर्मनिरपेक्षता' के दिवालियेपन का नमूना है। 'सर्वधर्मसमभाव' वाली धर्मनिरपेक्षता का हश्र यही होना था।

बहरहाल अब मोदी की दुबारा ताजपोशी के बाद 'हिन्दुत्ववादी' फासीवादी ताकतों के हौसले बुलन्दी पर हैं। फासीवादी अभियान के नये आक्रामक दौर के घण्ट-घड़ियाल बज चुके हैं। ऐलान हो चुका है कि 'गुजरात प्रयोग' को पूरे देश में दुहराया जायेगा। 'गुजरात प्रयोग' की सफलता से बौराए प्रवीण तोगड़िया ने यहां तक घोषणा कर दी है कि अगले दो वर्षों में गुजरात 'हिन्दू राष्ट्र' बन जायेगा। पूरे देश में 'हिन्दुत्व' के विरोधियों से निपटने की धमकियां दी जा रही है।

### यह एक सुनियोजित नरसंहार था'

**गोधरा की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद गुजरात में जो हुआ वह 'क्रिया की स्वभाविक प्रतिक्रिया' नहीं थी, जैसा कि संघ परिवार के तमाम मुख और मुखौटे बोलते चले आ रहे हैं। तमाम स्वतंत्र जांच दलों के रिपोर्टों और स्वयं सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी यह माना है कि गुजरात में गोधरा की घटना के बाद राज्य द्वारा प्रायोजित नरसंहार किया गया जिसमें कई हजार मुसलमान मारे गये और लाखों लोगों की आजीविका के साधन नेस्तनाबूद कर दिये गये और वे शरणार्थी बना दिये गये।**

**नवम्बर' 02 के आखिरी महीने में रिलीज हुई न्यायमूर्ति (अवकाश प्राप्त) वी.आर. कृष्णा अय्यर की अध्यक्षता वाली 'नागरिक पंचाट' की रिपोर्ट में भी साफ तौर पर कहा गया है कि गोधरा की घटना के बाद गुजरात में जो हुआ वह 'नरसंहार की परिभाषा के तहत आता है। इसकी योजना छह महीने पहले ही बना ली गयी गयी थी।' "जबकि गोधरा की घटना स्वतः स्फूर्त थी। इसे अंजाम देने वाले "रंगरूटों" को "बताया जा चुका था कि कुछ होने वाला है"। संभवत अयोध्या की घटनाओं के साथ तालमेल बैठाते हुए मध्य मार्च तक इसे अंजाम देने की तैयारी थी। इसी बीच "27 फरवरी की घटना उनके लिए वरदान साबित हो गयी।"**

उधर संघ परिवार के रणनीतिकर गुजरात में आक्रामक हिन्दुत्व की सफलता के बाद भी नरम गरम का खेल कुशलता से खेल रहे हैं। एक तरफ अगिया बैतालों को कुछ भी बकने की छूट मिली हुई है और दूसरी तरफ अटल बिहारी जैसे 'उदारवादियों' को भी 'चिन्तन' की छूट है। उदार-अनुदार दोनों खेमों के खिलाड़ियों को सार्वजनिक रूप से एक दूसरे के खिलाफ आस्तीनें चढ़ाने की भी छूट है। यूं कुछ लोग मानते हैं कि संघ परिवार के भीतर सचमुच अन्दरूनी अन्तविरोध हों ऐसा होने पर भी यह मुख्य पहलू कतई नहीं है। मुख्य पहलू यही है कि एक दूसरे की विरोधी दिखने वाली भंगिमाओं का कुशलतापूर्वक संघी एजेण्डे को आगे बढ़ाने के लिए कैसे इस्तेमाल किया जाये। इसमें दो राय नहीं कि संघ परिवार की राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी धीरे-धीरे देश के शासक बुर्जुआ वर्ग ही नहीं

साम्राज्यवादी महाप्रभुओं की भी अधिक से अधिक विश्वासपात्र बनती जा रही है। सरकार में बैठकर वह देशी-विदेशी पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी का काम अच्छी तरह संभाल रही है। लेकिन फिर भी देश का बुर्जुआ वर्ग और साम्राज्यवादी दोनों ही भाजपा के प्रति अभी पूरी तरह दुविधा मुक्त नहीं हो पाये हैं।

इनकी दुविधा यह है कि अभी भूमण्डलीकरण की नीतियां अमल में पूरी तरह स्थायित्व नहीं ग्रहण कर पायी हैं। देश के विभिन्न इलाकों में देशी-विदेशी पूंजी के निवेश के लिए जो 'सामाजिक शान्ति' चाहिए वह भाजपा के फासीवादी एजेण्डे को उग्रता के साथ लागू करने के कारण भंग हो जा रही है। अकेले गुजरात की घटनाओं ने पूंजीनिवेश को प्रभावित किया हैं उनकी चिन्ता यह भी है कि अगर गुजरात जैसा नरसंहार होगा तो इसकी प्रतिक्रियास्वरूप अक्षरधाम जैसी घटनाएं भी होंगी। जिसके सामाजिक शान्ति को दुहरा खतरा पैदा होगा। लेकिन, इसके साथ ही भूमण्डलीकरण के नतीजों से पैदा हो रहे जनअसंतोष को शान्त करने के लिए जनता को बांटना और छद्म दुश्मन भी खड़ा करना भारतीय शासक वर्ग की जरूरत है। इसलिए उसे हिन्दू राष्ट्रवाद या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नारा जनता में पड़ोसी देश के प्रति अन्धराष्ट्रवादी भावनाएं भड़काने और जनता को बांटने के दोनों मंसूबों को पूरा करता नज़र आ रहा है। दरअसल यह भारतीय शासक वर्ग की ही दुविधा नहीं है बल्कि पाकिस्तानी हुक्मरान भी इसी पशोपेश में पड़े हुए हैं। मुशर्रफ के भारत विरोधी तेवर और कश्मीरियों के संघर्ष के प्रति समर्थन देना पाकिस्तानी अवाम के भीतर अन्धराष्ट्रवादी भावनाओं को भड़काने के हथकण्डे हैं जिससे घरेलू असन्तोष पर काबू पाया जा सके। पाकिस्तानी हुक्मरान को कश्मीरियों की आजादी की लड़ाई से कोई लेना-देना नहीं हैं। दरअसल दोनों ही देशों के शासक वर्ग यह तो चाहते हैं कि देश के भीतर जनता के विभिन्न हिस्सों के बीच साम्प्रदायिक तनाव व युद्धोन्माद बना रहे लेकिन गुजरात नरसंहार व अक्षरधाम जैसी घटनाओं को वे फिलहाल टालना चाहते हैं। गुजरात नरसंहार के प्रति देश के बुर्जुआ मीडिया के मुख्य हिस्से के आलोचनात्मक रुख को शासक वर्गों की इसी दुविधा के रूप में देखा जाना चाहिए।

अमेरिका सहित सभी साम्राज्यवादी देशों के हुक्मरान की वही दुविधाएं और जरूरते हैं जो भारतीय एवं पाकिस्तानी शासक वर्गों की। वे समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में तनाव व अशान्ति का वातावरण तो बनाये रखना चाहते हैं पर न वे गुजरात जैसे हालात के पक्ष में हैं और न ही भारत व पाकिस्तान के बीच युद्ध ही चाहते हैं। फिलहाल पूंजीनिवेश के लिए उन्हें 'सामाजिक शान्ति' चाहिए जिससे संकटों में फंसी उनकी अर्थव्यवस्थाओं को राहत मिल सके।

दरअसल भारतीय शासक वर्ग और उनके साम्राज्यवादी आका हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद को जंजीर में बंधे शिकारी कुत्ते की तरह फिलहाल नियंत्रित रखना चाहते हैं। आने वाले दिनों में जब व्यवस्था के प्रति जन असंतोष के उग्र रूप अख्तियार करने का अन्देशा होगा तो उस समय के लिए वे इस विकल्प को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

देशी-विदेशी आकाओं के इसी रुख के मद्देनजर वाजपेयी और आडवाणी गाहे-बगाहे गुजरात की घटनाओं पर 'शर्म' महसूस करते दिख जाते हैं और उनकी पुनरावृत्ति न होने देने का आश्वासन देते नजर आ जाते हैं। जनवरी' 03 के पहले हफ्ते में हुए प्रवासी भारतीयों के जमावड़े के मौके पर आडवाणी तक ने अनिवासी भारतीयों की सभा में एक बार फिर गुजरात के 'दंगों' पर 'शर्मसार' हुए और ऐसी घटनाओं को दुबारा न होने देने का आश्वासन दिया। साम्राज्यवादियों की दुविधाओं को दूर करने और उनके बीच अपनी राजनीतिक विश्वसनीयता कायम करने की कोशिश के ही तहत पिछले दिनों भाजपा अध्यक्ष वेंकैया नायडू ने साठ देशों के राजदूतों को भोजन पर बुलाकर 'हिन्दू राष्ट्रवाद' और 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' पर क्लास भी लिया है।

लेकिन मुसीबत यह है कि शासक वर्गों की चाहतें और उनकी राजनीति के तकाजे अक्सर एक दूसरे के आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। 'नियंत्रित फासीवाद' शासक वर्गों की चाहत हो सकती है और शासक वर्गों की विश्वसनीय पार्टी बनने के लिए भाजपा इस चाहत को पूरी करने में जी जान से जुटी भी हुई है। लेकिन भारतीय जनता पार्टी के जो अपने राजनीतिक तकाजें हैं वे इन चाहतों के आड़े आ जाते हैं। चाहे लोकसभा चुनाव हो या विधानसभा चुनाव, भाजपा की मजबूरी यह है कि उसके पास हिन्दू वोटों के ध्रुवीकरण के अलावा दूसरा कोई चुनाव जिताऊ मुद्दा नहीं है। इसीलिए उग्र हिन्दुत्व की शरण में जाकर मतदाताओं के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की रणनीति पर अमल कर रही है। विहिप-बजरंग दल को भाजपा नेताओं की सार्वजनिक डांट-फटकार भी उसकी रणनीति का ही अंग है। वह उदार हिन्दू मतों को भी दूर नहीं जाने देना चाहती और अनुदार हिन्दू मत तो उसके साथ हैं ही। गुजरात में उग्र हिन्दुत्व की लाइन ने ही मोदी की वापसी करायी है। इसलिए फिलहाल वह आगामी छह महीने में होने वाले दस राज्यों के विधानसभा चुनावों और डेढ़ साल बाद होने वाले लोकसभा चुनाव भी इसी लाइन पर लड़ना चाहती है। गुजरात प्रयोग को देशव्यापी बनाने के बयान सिर्फ मुसलमानों को डराने के लिए नहीं वरन यह संकेत है कि अब उग्र हिन्दुत्व की लाइन ही देशभर में लागू होगी। शासक वर्ग भले चाहे कि शिकारी कुत्ता जंजीर में बंधा रहे लेकिन भाजपा अपनी राजनीतिक जरूरत को पूरा करने के लिए जंजीर खोल भी सकती है, जैसा उसने गुजरात में किया। दरअसल, हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद भारतीय पूंजीवाद का नासूर बन गया है। यह उसके शरीर का हिस्सा बन गया है, लगातार टीसता रहेगा इसलिए अगर इस नासूर को खत्म करना है तो पूंजीवाद को खत्म करना होगा। गुजरात के बाद जो हालात बन रहे हैं वे बेहद चिन्तनीय हैं, खतरनाक हैं। फासीवाद राक्षस को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। उसका सिर्फ संहार हो सकता है। जब तक इसका संहार नहीं होगा तब तक यह मानव रक्त पीता रहेगा, अट्टहास करता गलियों में बेधड़क घूमता रहेगा। इसलिए आज जरूरत है कि इसका संहार करने वाली सामाजिक ताकतों को जगाया जाये। चुनावी जोड़- तोड़ से इसका मुकाबला नहीं किया जा सकता। संसदीय राजनीति की गत्ते की तलवारों से इसका वध नहीं हो सकता है। देश की मेहनतकश आबादी की क्रान्तिकारी एकजुटता के दम पर ही साम्प्रदायिक फासीवाद के राक्षस का संहार किया जा सकता है। यदि इस दिशा में हमने ठोस, जमीनी स्तर पर तैयारियां अभी से नहीं शुरू कीं तो पूरे मुल्क में बर्बरता का राज कायम हो जायेगा। जर्मनी की क्रान्तिकारी *क्लारा जेटकिन* ने जर्मन फासीवादियों की करतूतों को देखते हुए कहा था कि इन्सानियत के सामने अब सिर्फ दो ही विकल्प हैं- समाजवाद या बर्बरता। आज यही दोनों विकल्प हमारे सामने भी खड़े हैं। चुनाव हमें करना है।सचमुच बीच का कोई रास्ता नहीं बचा है। मेहनतकशों के बहादुर व विवेकवान बेटे-बेटियां अगर फैसलाकुन ढंग से यह बात समझ जायें तो साम्प्रदायिक फासीवाद के राक्षस का वध करना कोई कठिन काम नहीं है। जब उजाले की ताकतें सोयी रहती हैं तभी अन्धेरा अट्टहास करता है। इसलिए हमें खुद भी जागना होगा और समूचे मेहनतकश अवाम को जगाने का बीड़ा उठाना होगा नहीं तो बर्बरता का परचम गुजरात से आगे बढ़कर समूचे देश में लहरायेगा।

# हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद के सामाजिक आधारों का खतरनाक विस्तार

**राकेश**

पिछले दो दशकों के दौरान हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों ने आश्चर्यजनक रफ्तार से अपने सामाजिक आधारों का खतरनाक विस्तार किया है। एक समय देश की चुनावी राजनीति की परिधि पर पड़ी भारतीय जनता पार्टी आज केन्द्र की सत्ता पर काबिज है और अनेक राज्यों में वह दुसरी प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन चुकी है। इससे भी खतरनाक बात यह है कि इन ताकतों ने देश की हिन्दू आबादी के एक बड़े हिस्से का मानस साम्प्रदायिकता के जहर से भर दिया है। यहाँ तक कि अपनी आक्रामक प्रचार रणनीति के जरिये इन्होंने शिक्षित युवाओं के बड़े हिस्से के बीच भी अच्छी-खासी पैठ बना ली है। ऐसे में किसी तात्कालिक सतही रणनीति के आधार पर इनसे लोहा लेने की बात भी नहीं सोची जा सकती। आज जरूरत है एक व्यापक एवं दूरगामी रणनीति और ठोस जमीनी कार्रवाईयों की। लेकिन इस पर चर्चा से पहले देश में हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद के प्रभाव-विस्तार के साथ ही उसके सामाजिक आधार के फैलने की प्रक्रिया पर एक नजर दौड़ा लेना गैर जरूरी नहीं होगा।

## सामाजिक आधारों का धीरे-धीरे विस्तार

देश के आर्थिक- राजनीतिक विकास की जिस प्रक्रिया से गुजरते हुए संघ परिवार की राजनीतिक शाखा भारतीय जनता पार्टी आज बुर्जुआ राजनीति के हाशिये से उठकर केन्द्र की सत्ता तक पहुंची है उसी प्रक्रिया में धीरे-धीरे हिन्दू साम्प्रदायिक- फासीवाद का सामाजिक आधार भी फैलता गया है। व्यापारियों के बीच सीमित सामाजिक आधार 1980 के दशक के बाद तेजी से पसरते हुए आज विभिन्न सामाजिक वर्गों में पैठ चुका है।

व्यापारियों के बाद सबसे पहले संघ परिवार ने उत्तर भारत में तथा कथित सवर्ण जातियों के उन पुराने प्रतिक्रियावादी वर्गों के बीच अपनी जगह बनायी जिनका एक हिस्सा पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप गांवों के नये पूंजीवादी भूस्वामी वर्गों मे शामिल हो चुका है और उसका बड़ा हिस्सा गांवों का मध्यम किसान या शहरी मध्यवर्गीय नौकरी पेशा वर्ग बन चुका है। पहले यह वर्ग कांग्रेस का सामाजिक आधार हुआ करता था। फिर संघ परिवार की मध्यजातियों के बीच भी पैठ शुरू हुई। पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप यादव, कुर्मी, कोइरी, अवधिया, खटिक आदि जातियों का एक हिस्सा आज गांवों का नया कुलक-भूस्वामी वर्ग बन चुका है। आर्थिक स्थिति की इस मजबूती से इनकी राजनीतिक क्षेत्र में भी दावेदारी की आकांक्षाएं पैदा हुई। ऐतिहासिक रूप से सामाजिक- सांस्कृतिक धरातल पर पिछड़ा होने और निरंकुश चरित्र के चलते इस वर्ग को भाजपा की पिछड़ीधार्मिक कट्टरपंथी राजनीति रास आने लगी। हालांकि इन जातियों के बीच से उभरे मुलायम सिंह यादव, लालू यादव, नीतिश कुमार जैसे नेता और उनकी पार्टियां प्रमुख रूप से अपने सजातीय आधारों को बनाये रखने में फिलहाल कामयाब बनी हुई हैं लेकिन भाजपा ने भी इनके बीच अच्छी-खासी सेंधमारी कर ली है।

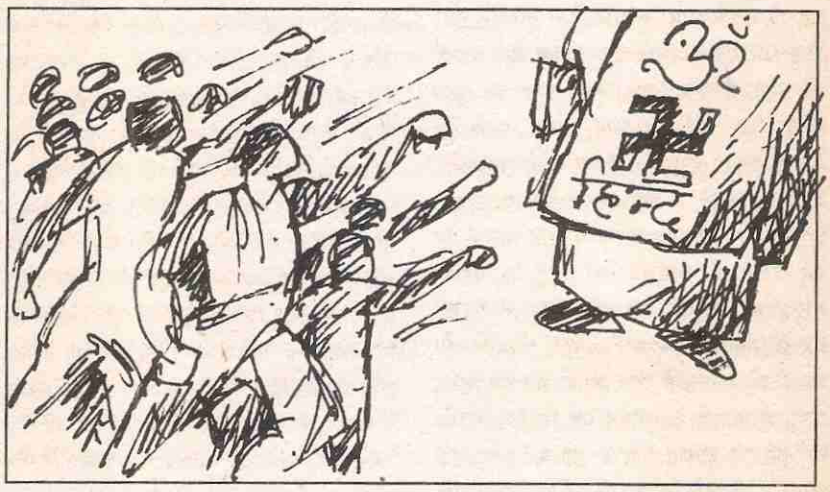


मध्य जातियों के साथ ही संघ परिवार ने उजड़े हुए लम्पट सर्वहाराओं के बीच भी अपनी खतरनाक पैठ बना ली है। संघ परिवार की विभिन्न शाखाओं द्वारा शहरी मुहल्लों और गांवों में योजनाबद्ध ढंग से आयोजित किये जाने वाले धार्मिक आयोजनों- भगवती जागरणों में इस वर्ग के युवा माथे पर केसरिया पट्टी बांधे बेहद उत्साही भक्तों के रूप में सक्रिय दिखायी देते हैं। गुजरात नरसंहार में संघ परिवार ने लम्पट सर्वहारा युवाओं की इस आबादी को बकायदा प्रशिक्षण देकर हत्याओं की उन्मादी भीड़ में तब्दील कर दिया था। इसके अलावा जिन 'आदिवासियों' को इस हत्याकाण्ड में शामिल बताया जा रहा है वे भी दरअसल उजड़े हुए भूमिहीन हैं। पूंजीवादी विकास ने इन 'आदिवासियों' से परम्परागत आजीविका के साधनों को छीनकर सड़कों पर ला पटका है। विभिन्न 'सुधार' कार्यों के जरिये आर.एस.एस ने इनके मानस को जहरीले साम्प्रदायकि भावनाओं से भरकर और बाकायदा रुपये देकर गुजरात में मुसलमानों पर कहर बरपा कराया। इसके साथ ही देश के ट्रेड यूनियन आन्दोलन पर हावी सी.पी.आई.,सी.पी.एम. जैसी नकली वामपंथी पार्टियों से जुड़ी 'एटक' व 'सीटू' जैसी ट्रेड यूनियनों के अवसरवाद व गद्दारियों के कारण निराश-हताश औद्योगिक मजदूर वर्ग के बीच भी पिछले एक दशक के दौरान भारतीय मजदूर संघ के जरिये आर.एस.एस. ने अपनी प्रभावी घुसपैठ बना ली है।

## मध्य वर्ग के बीच आधार विस्तार

ऐतिहासिक कारणों से भारतीय मध्य वर्ग (शहरी और ग्रामीण दोनों) का अधिकांश हिस्सा आज भी पोंगापन्थी, अविवेकी और धर्मभीरू बना हुआ है। पश्चिमी समाजों की तरह जनवाद के मूल्य इसके जीवन दर्शन और दैनन्दिन आचार-व्यवहार के अंग नहीं बन पाये हैं। इसकी जगह सामान्ती निरंकुशता और अतर्कपरकता के मूल्य ही आज भी मुख्यत: इस वर्ग की जीवन शैली में रचे- बसे हुए हैं विभिन्न सामाजिक रुढ़ियों, वर्ण व्यवस्था के संस्कारों और कूप मण्डूकतापूर्ण कर्मकाण्डों में यह आज भी जकड़ा हुआ है। दरअसल न तो राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में और न ही 1947 के बाद ही कोई ऐसा व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक जन आन्दोलन, विशेषकर हिन्दी पट्टी में, चला जो इस स्थिति को बदलता। चूंकि यह स्थिति देशी पूंजीवादी सत्ता को टिकाये रखने के लिए मुफीद है इसलिए शिक्षा व्यवस्था शासक वर्गों की मीडियाऔर सत्ता प्रतिष्ठानों से यह उम्मीद करना ही बेमानी है कि इनके जरिये कोई सार्थक प्रयास किया जाता। आर.एस.एस. की घोर पुरातनपन्थी, अतीतोन्मुख और जनवाद निषेधी विचारधारा और उसके कथित हिन्दू राष्ट्रवाद या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के फलने- फूलने के लिए मध्यवर्ग की जमीन ऐतिहासिक रूप से काफी उपजाऊ थी। इसीलिए जैसे ही 1980 के दशक में व्यवस्था का संकट नये दौर में प्रवेश करता है, महंगाई- बेरोजगारी की मार मध्यवर्ग की पीठ पर पड़नी शुरू होती है, भविष्य की अनिश्चितता गहराने लगती है तो विकल्प के अभाव में मध्य वर्ग का बड़ा हिस्सा संघ परिवार के आक्रामक प्रचार- अभियान से उसकी ओर खिंचता चला जाता है। जब आगे का रास्ता बन्द गली के छोर तक पहुंच जाये तो फिर पीछे मुड़कर देखने या नियति या भाग्य की शरण मे जाने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नजर नहीं आता। इसके साथ ही जीवन की तकलीफों का जब वास्तविक कारण न समझ में आये और सही दुश्मन की पहचान धुंधली हो तो फिर अवास्तविक कारणों और छद्म दुश्मन से जूझने की हारी हुई मानसिकता पैदा होती है।

आज चाहे शहरी मध्य वर्ग हो या ग्रामीण- दोनों का सामाजिक जीवन भूमण्डलीकरण की नीतियों के चलते अधिकाधिक असुरक्षित होता जा रहा है। बेरोजगारी के काले साये इन वर्गों के युवाओं की आत्माओं में भी अन्धेरा भरते चले जा रहे हैं। कोई क्रान्तिकारी सामाजिक-राजनीतिक विकल्प नजर नहीं आ रहा है। ऐसे में ही इन वर्गों के हताश-निराश कुण्ठित युवाओं के बीच उन्मादी प्रचार करके संघ परिवार अपने खूनी 'हिन्दुत्व' की जड़े जमाने में कामयाब होता जा रहा है।

**मक्सिम गोर्की** ने फासीवादियों के सामाजिक आधार के बारे में एक जगह लिखा है कि निम्न मध्यवर्ग के बेरोजगार पीले चेहरे वाले हताश 'निराश' कुण्ठित युवाओं के बीच से फासिस्ट अपनी कतारों की भर्ती करते हैं। आज के भारत के मध्यवर्गीय युवाओं के संदर्भ में यह बात कितने सटीक ढंग से लागू हो रही है।

## कैम्पसों में प्रभाव विस्तार और कुलीन प्रगतिशीलता

उच्च शिक्षा के कैम्पस भी हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों की घातक चपेट में आ चुके हैं छोटे शहरों या कस्बों के डिग्री कालेज ही नहीं दिल्ली विश्वविद्यालय और जे.एन.यू जैसे अभिजात और जनतांत्रिक माहौल वाले कहे जाने वाले परिसरों में भी काफी गाढ़ा भगवा रंग चढ़ चुका है। छोटे शहरों व कस्बों के उच्चशिक्षा कैम्पसों का वातावरण पिछड़े सामाजिक- सांस्कृतिक-गैरजनतांत्रिक परिवेश के बीच स्थित होने के कारण पहले से ही साम्प्रदायिक विचारों के फलने- फूलने के लिए अनुकूल था। इन कैम्पसों की छात्र राजनीति ममें मुख्यत: कुलकों एवं भूस्वामी वर्ग के छात्रों की पकड़ कायम थी जो जाति धर्म क्षेत्र की भावनाएं भड़काकर अपनी राजनीति की गोटी चमकाते थे। शिक्षक राजनीति के जातिवादी मठाधीशों और स्थानीय बुर्जुआ राजनीति के सरदारों का इन्हें खुला संरक्षण मिला करता है, यह भला कौन नहीं जानता। जैसे-जैसे देश की बुर्जुआ राजनीति की फिजां बदली है वैसे-वैसे इन कैम्पसों की छात्र राजनीति भी अपना चरित्र बदलती गयी है और इन कैम्पसों में संघ परिवार की विद्यार्थी शाखा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद ने अपना मजबूत आधार बना लिया है। संघ के स्वयंसेवक शिक्षकों ने अपना भरपूर वैचारिक-व्यावहारिक मार्गदर्शन देकर योजाबद्ध ढंग ए.बी.वी.पी. के पांव मजबूत बनाने में मदद की है और कर रहे हैं।

लेकिन महानगरीय कैम्पसों की स्थिति इससे भिन्न थी। यहां का बेहतर जनतांत्रिक अकादमिक वातावरण और प्रगतिशील धर्मपनिरपेक्ष सोच वाले शिक्षकों की अच्छी खासी मौजूदगी लम्बे समय तक एबीवीपी की साम्प्रदायिक छात्र राजनीति के लिए पिछड़े वर्गों के कैम्पसों के मुकाबले प्रतिकूल बनी रही। लेकिन साम्प्रदायिक फासीवादी आक्रामकता का नया दौर शुरू होने के बाद स्थितियां तेजी से बदतली गयीं। एक तो कांग्रेसी छात्र संगठन एन एस यु आई की राजनीतिक संस्कृति की चरम पतनशीलता और एस.एफ. आई., ए.आई.एस.एफ., 'आइसा' जैसे नकली वामपन्थी छात्र संगठनों की नपुंसक प्रगतिशीलता और दूसरी ओर किसी प्रभावशाली क्रान्तिकारी विकल्प की गैरमौजूदगी ने ए.बी.वी.पी. को अपनी जड़े जमाने का सुनहरा अवसर दिया। कैम्पस में मौजूद 'प्रगतिशील व धर्मपरिपेक्ष ताकतों' ने आक्रामक भगवाकरण मुहिम का प्रतिकार जिस रक्षात्मक ढंग से किया वह भगवा ब्रिगेड की हौसला आफजाई करने वाला ही साबित हुआ। यह अभिजात-सुसंस्कृति प्रगतिशीलता और नखदन्तहीन धर्मनिरपेक्षता कैम्पस के गरीब सामाजिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों को बिदकाने वाली ही साबित हुई। बन्द कमरों की गोष्ठियां- सेमिनार जिनमें अंग्रेजी में पर्चे पढ़े जाते हों अंग्रेजी में ही साम्प्रदायिक फासीवाद का गहन-गम्भीर वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता हो, कुछेक पोस्टर प्रदर्शनियां, फिल्म शो, मोमबत्तियां जलाने या देश की गंगा- जमुनी संस्कृति की दुहाई देने वाले कुछेक अन्य सांस्कृतिक जलसे ये सब आम छात्रों को विकर्षित करने वाले ही रहे। दरअसल, इन ताकतों का साम्प्रदायिकता विरोध सांस्कृतिक अन्दाज में या उत्सव मनाने से आगे नहीं बढ़ सका। इतना ही नहीं, 'सोने में सुहागा' यह कि साम्प्रदायिकता विरोध के इन अनुष्ठानों में एनजीओ वाले भी खुले छिपे रूप से शामिल होकर 'प्रगतिशील'- धर्मपरिपेक्ष- भजन कीर्तन गाते बजाते रहे या बाबरी मस्जिद की शहादत पर सालाना मातम मनाने पहुंचते रहे। एनजीओ से लुके छिपे चोंच लड़ाने वाले इन प्रगतिशीलों के मुंह से लिया गया भगत सिंह का नाम भी आम छात्रों की नजरों में भगत सिंह की

विरासत को कलंकित कर रहा है।

## इतिहास का सबक और संघर्ष की रणनीति

आज हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का जितना व्यापक और खतरनाक प्रभाव-विस्तार हो चुका है, राजनीति ही नहीं समूचे सामाजिक - सांस्कृतिक ताने-बाने में जिस गहराई तक इनकी पैठ हो चुकी है उसका मुकाबला अनुष्ठानों या प्रतीकात्मक विरोधों से कतई नहीं किया जा सकता। उल्टे इस तरह के विरोध इन ताकतों को मजूबत ही बना रहे हैं। आज जरूरत है एक जुझारू रणनीति और व्यापक जमीनी कार्रवाईयों की। लेकिन इन मानवद्रोही ताकतों से लोहा लेते समय हमें दुनिया में फासीवादी विरोधी संघर्ष के सबकों को नहीं भूलना चाहिए।

दुनिया में फासीवाद विरोधी संघर्ष के अनुभवों से निकला पहला सबक तो यही है कि संघर्ष की धार को उस पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ केन्द्रित किया जाये जिसके संकटों से ताकत पाकर आज देश ही नहीं पूरी दुनिया में फासीवादी ताकतें अपना सिर उठा रहीं हैं। हमें साथ ही यह बात भी भलीभांति समझनी होगी कि पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ इस निर्णायक ऐतिहासिक संघर्ष में सबसे मजबूत, अडिग और सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति मेहनतकश अवाम ही हो सकता है। जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद जिन्दा रहेगा तब तक फासीवाद का राक्षस जिन्दा रहेगाऔर समाज को अपना ग्रास बनाता रहेगा। इसलिए हमें देश के भीतर हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवाद को निर्णायक शिकस्त देने के लिए किसी भी तरह के सुधारवादी भ्रमों में पड़ने समझौता परस्ती या चुनावी जोड़-तोड़ की पिलपिली रणनीति के चक्कर में पड़ने के बजाय जनसंघर्षों की क्रान्तिकारी रणनीति अख्तियार करनी होगी। हमें मेहनतकशों को फासीवाद के खिलाफ लड़ाकू सेनाओं के रूप में ढालने की तैयारी करनी होगी। शहरी औद्योगिक मजदूरों से लेकर छोटे-मोटे काम धन्धे करने वाले शहरी गरीब, ग्रामीण मजदूर व गरीब किसान व मध्यम वर्ग के लोग मेहनतकशों की इस विशाल सेना के ही हिस्से हैं। समाज के ये ही वर्ग हैं जो आज भूमण्डलीकरण की नीतियों से तबाह-बर्बाद हो रहे हैं, ठगे लूटे जा रहे हैं। लेकिन हताशा-निराशा व विकल्पहीनता में जी रहे इन्हीं वर्गों को 'हिन्दुत्ववादी' फासीवादी ताकतें अपने जहरीले झूठे प्रचारों के जरिये अपनी चपेट में ले रही हैं। इन्हीं वर्गों के युवाओं के बीच से ये ताकतें अपने सिपाहियों की भर्तियां भी कर रही हैं। लेकिन इतिहास का सबक यह भी है कि जब कोई क्रान्तिकारी विकल्प उभरकर सामने आता है और भविष्य की राहें दिखायी देती हैं, तो यही मेहनतकश आबादी फासीवादी ताकतों के खिलाफ सबसे मजबूती से मोर्चा सम्भालती है। इनमें भी मजदूर वर्ग सबसे आगे बढ़कर मोर्चा संभालता है। आज अगर मजदूर वर्ग का एक बड़ा हिस्सा भी साम्प्रादायिक फासीवादी दुष्प्रचार में बहकर अपने ऐतिहासिक कार्यभार से दूर खड़ा दिख रहा है तो सिर्फ इसलिए कि उसे अपनी ताकत का अहसास दिलाने वाली समाज की प्रगतिशील क्रान्तिकारी ताकतें ही उससे दूर खड़ी हैं। इसलिए, आज हमारे सामने यह कठिन चुनौती उपस्थित है। क्या मानवता के बेहतर भविष्य में आस्था रखने वाले सच्चे क्रान्तिकारी युवा इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए आगे नहीं आयेंगे!

## युवाओं को अग्रिम मोर्चे सम्भालने होंगे

इतिहास का यह भी सबक है कि जब भी कोई ऐतिहासिक कार्यभार या चुनौती उपस्थित हुई है तो उसे स्वीकार करने के लिए मेहनतकशों के बहादुर बेटे-बेटियां सदा ही आगे आते रहे हैं। आज भी यही होगा। अन्धेरे की ताकतें समाज को बर्बरता के राज्य में हमेशा के लिए नहीं ले जा सकतीं। आज भी सच्चे युवाओं को यह जिम्मेदारी निभानी ही होगी।

आज सच्चे युवाओं को साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों से लोहा लेने के लिए साहसपूर्वक पहलकदमी लेनी होगी। उन्हें हर मोर्चे पर इन ताकतों को टक्कर देनी होगी और जनता के सभी वर्गों के प्रचार-प्रसार गोलबन्दी एवं संगठन का काम अपने हाथ में लेना होगा। शिक्षा और रोजगार के बुनियादी अधिकार के लिए व्यापक छात्र - युवा आबादी को दूरगामी संघर्ष की दिशा में संगठित करने के साथ साथ साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के खिलाफ व्यापक, सघन और जुझारू वैचारिक-सांस्कृतिक अभियान संगठित करने होंगे। युवाओं को अपनी क्रान्तिकारी गायन टोलियां-नाट्य टोलिया संगठित करनी होंगी। अपने तमाम वैचारिक-सांस्कृतिक औजारों से लैस होकर मध्यवर्ग के छात्रों-युवाओं की व्यापक आबादी ही नहीं मेहनतकशों के बीच-औद्योगिक मजदूरों की बस्तियों, झुग्गी झोपड़ियों में जाना होगा और उनकी सोयी हुई आत्माओं को जगाना होगा। कैम्पसों में साम्प्रदायिकता विरोध की अपनी क्रान्तिकारी रणनीति के आधार पर प्रचार-प्रसार, संगठित करने की स्वतंत्र कार्रवाइयों के साथ-साथ जहां भी और जिस हद तक भी संभव हो सुधारवादी वामपंथी संगठनों-प्रगतिशील धर्मनिरपेक्ष शिक्षकों को एक व्यापक संयुक्त मोर्चे के अंतर्गत साथ लेने की कोशिश भी करनी होगी। क्योंकि हमें इतिहास का यह सबक भी नहीं भूलना चाहिए कि अन्धेरे की ताकतों के खिलाफ संघर्ष में किसी छोटी से छोटी चीज की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ●

**शहीदे आज़म भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु और गणेशशंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस पर**

"भारतीय रिपब्लिक के नौजवानों नहीं सिपाहियों कतारबद्ध हो जाओ। आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक कदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन हैं देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चित है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। वैसे ही खाली जिन्दगी न गंवाओ। बढ़ो, तुम्हारी जिन्दगी का हर पल इस तरह के तरीके और तरतीब ढूंढ़ने में लगना चाहिए कि कैसे अपनी पुरातन धरती की आंखों में ज्वाला जागे और यह एक लम्बी अंगड़ाई लेकर जाग उठे।... तब एक भयानक भूचाल आयेगा, जो बड़े धमाके से गलत चीजों को नष्ट कर देगा और साम्राज्यवाद के महल को कुचलकर धूल में मिलादेगा और यह तबाही महान होगी।"

**(हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन के घोषणापत्र से)**

# नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली

गौरव

दुनिया की हर प्रजाति के फासीवादियों की तरह हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादियों की प्रचार-रणनीति भी सफेद झूठ पर टिकी है। हिटलर के कुख्यात प्रचार मंत्री गोयबल्स की प्रचार शैली का तो सूत्रवाक्य ही था कि एक झूठ को सौ बार दुहराओ तो वह सच में बदल जाता है। लेकिन 'स्वदेशी' फासीवादियों ने तो इस गोयबल्सवादी प्रचार शैली को भी मात दे दी है और अनेक सफेद झूठों को हिन्दू जनमानस में इस कदर पैठा दिया है कि इसके दिलों में मुसलमानों और सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति गहरी नफरत भरी हुई है। इन सफेद झूठों की सूची इतनी बड़ी है कि पत्रिका के सीमित पन्नों में उन सबकी पोल खोलना संभव नहीं। यहां संघ परिवार द्वारा प्रचारित कुछ ऐतिहासिक सफेद झूठों की पोल खोलने और इनके असली राजनीतिक चरित्र एवं सांगठनिक कार्यशैली के बारे में कुछ रोशनी डालने से ही संतोष करना पड़ेगा।

## किस अतीत का गौरव गान?

अपने देश और समाज के भविष्य को सुन्दर बनाने की कामना रखने वाला हर प्रगतिशील समाज अपने अतीत से, इतिहास से हमेशा ही सीखता है। लेकिन यह भी सही है कि अतीत की ओर देखने वाली दृष्टि उज्जवल भविष्य कामना और नीर-क्षीर विवेक से सम्पन्न होनी चाहिए। न अतीत के प्रति मिथ्याभिमान होना चाहिए और न ही सम्पूर्ण नकार का भाव होना चाहिए। अतीत के प्रति मोहाशक्ति, चाहे वह कितना भी गौरवशाली न रहा हो, वर्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बना ही नहीं सकता। लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विभिन्न शाखाओं -प्रशाखाओं के प्रचारक- किस गौरवशाली अतीत का महिमामण्डन करते हैं? अतीत के किन मूल्यों मान्यताओं, संस्थाओं, आचार-व्यवहार को वे आदर्श बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

संघ परिवार के भारत अतीत की प्रगतिशील मनीषा का उपासक नहीं है। वह अतीत के उज्ज्वल पक्षों को नहीं उभारता, अन्धेरों का स्तुतिगान करता है। उसकी दृष्टि सतत प्रवाहमान निर्मल सरिता पर नहीं टिकती, ठहरे हुए सड़कर बजबजा रहे कुओं-पोखरों-गड़हियों पर ही ठहरती है।

वैदिक सभ्यता का गुणगान करते नहीं थकता संघ परिवार। लेकिन भारतीय सभ्यता के इस उषाकाल में उसे प्रकृति से मानव का आत्मीय साहचर्य आदिम समष्टि की सृजनशीलता के दर्शन नहीं होते जिससे प्रेरणा लेकर मानव और प्रकृति के अलगाव को चरम पर पहुंचा देने वाली बाजार की शक्तियों के खिलाफ मानव ऊर्जा को केन्द्रित किया जा सके और व्यक्तिवाद एवं सामाजिक अलगाव को दूर करने के लिए समष्टि की बुनियाद पर नये ऊर्जावान समाज की रचना की जा सके। संघ परिवार वेदों से वैदिक कर्मकाण्ड सीखता है। वैज्ञानिक उत्कर्ष के आज के युग में वह वैदिक गणित और ज्योतिष विद्या को सीखता है। वैदिक गणित और ज्योतिष प्राचीनकालीन भारतीय मनीषा का अद्भुत प्रस्फुटन था। यह गर्व की बात तो हो सकती है लेकिन आधुनिक गणित एवं विज्ञान की आरंभिक कक्षाओं का विद्यार्थी भी यह अच्छी तरह समझ सकता है कि आज के समय में इसकी उपयोगिता की बात करना निरी मूढ़ता के अलावा और कुछ नहीं हो सकता।

संघ परिवार अतीत से सीखने के नाम पर अमानवीय वर्ण व्यवस्था का पैरोकार है। जिसमें शूद्र और अन्त्यज जातियों को पशओं से भी नीचा समझा जाता था। चुनावी राजनीति की मजबूरियों के चलते भले ही संघ परिवार की राजनीतिक शाखा भाजपा दलितों को आरक्षण दने का अवसरवादी समर्थन करती हो, लेकिन वस्तुत: आज भी तहे दिल से वह वर्ण व्यवस्था का हिमायती है। इसीलिए वह जाति व्यवस्था के उन्मूलन की बात नहीं करता, सामाजिक समरसता की बात करता है।

प्राचीन काल की विदुषी महिलाओं का उल्लेख गर्व के भाव से संघ परिवार के सदस्य किया करते है। लेकिन स्त्रियों के प्रति उनका वास्तविक नजरिया क्या है? संघ परिवार के लिए आदर्श स्त्री की पहचान यह है कि उसकी अपनी कोई पहचान न हो। मूक पशुओं सी सर्वसहा, नीति-अनीति के विचार से परे पति चरणों की दासी, चूल्हे-चौखट की चारदीवारी में कैद एक गुलाम हो, जिसका एकमात्र काम पुरुष को तुष्ट करना-हृष्ट-पुष्ट बच्चे पैदा करना और धार्मिक कर्मकाण्डों में अपने पति का साथ देना हो। प्राचीन भारत के 'गौरवशाली' अतीत के इन ढिंढोरचियों के

नजरिये से अगर अतीत को देखा जायेगा और प्रेरणा ली जायेगी तो हमारा वर्तमान और भविष्य उन्हीं अन्धेरी गुफाओं में भटकता रहेगा, जहां हम आज खड़े कर दिये गये हैं जहां धर्मध्वजा उठाये और 'जयश्रीराम' की हुकारों के साथ हजारों इन्सानों को बर्बरता से कत्ल कर दिया जाता है, अजन्मे बच्चों की भ्रूण हत्या कर दी जाती है और सामूहिक बलात्कार होते हैं। भारत के अतीत में बहुत कुछ सीखने लायक है- अन्ध आस्था, दासवृत्ति और राजभक्ति के खिलाफ विवेक, समता के आदर्श और अन्याय के खिलाफ विद्रोह की परम्परा, तथा और भी बहुत कुछ। पर मतान्ध, धर्मान्ध और वर्णान्ध दृष्टि और पाशविक वृत्ति से अतीत को देखने पर इसे नहीं सीखा जा सकता। इसके लिए 'सर्वेभवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:' की लोकमंगलहारी भावना चाहिए, परपीड़क लोकभ्रष्टकारी उन्माद नहीं।

संघ परिवार भारत के अन्धेरे अध्यायों से और क्या-क्या सीखता है और शिशु मन्दिरों से लेकर शाखाओं तक 'गौरवशाली अतीत' के कौन-कौन से पन्ने खोले जाते हैं, यह अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है। इस टिप्पणी में फिलहाल इतना ही।

## कैसा स्वदेशी? कब से स्वदेशी?

जब से भूमण्डलीकरण का दौर शुरू हुआ है तब से संघ परिवार रह-रह कर स्वदेशी-स्वदेशी की टेर लगाता रहता है। संघ परिवार के सज्जनों आचार्यो! तुम स्वदेशी कब से हो गये? तुम्हारा तो न विचार कभी स्वदेशी रहा है और न ही आचार। तुम्हारी पैदाइश और जन्मकुण्डली से अनजान व्यक्तियों को इस झूठे आत्ममहिमामण्डन से भरमाने की यह कला भी तुमने कहां से सीखी?

अनेक प्रामाणिक दस्तावेजों से यह साबित किया जासकता है कि संघ परिवार की वैचारिक पैदाइश ही विदेशी विचारधारा के साथ 'नियोग-क्रिया' का फल है। यह सिर्फ ऐतिहासिक संयोग नहीं था कि जिस काल में जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी का उदय हो रहा था, ठीक उसी काल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना (1925 में नागपुर में) हुई थी। खुद आर.एस.एस. के सर्वोच्च नेतृत्व ने हिटलर की नाजी पार्टी (नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी का संक्षिप्त रूप) और इटली की फासीवादी पार्टी (इतालवी भाषा में 'फासी' शब्द संघ का पर्यायवाची होता है) की प्रेरणा को अपने लेखन में स्वीकारा था। डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार के साथ आर.एस.एस. के पांच प्रमुख संस्थापकों में से एक डॉ. वी.एस.मुंजे ने इटली जाकर मुसोलिनी से मुलाकात तक की थी और वैचारिक प्रसाद लेकर स्वदेश वापस लौटे थे। संघ परिवार का 'राष्ट्रवाद', मुसलमानों सहित सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति घृणा और हिन्दू जाति के प्रति श्रेष्ठताबोध, उसका सांगठनिक ढांचा-सब कुछ नाजी पार्टी और फासीवादी पार्टी से आश्चर्यजनक मेल खाता है। यहां तक कि संघ के स्वयंसेवकों का गणवेश (यूनीफार्म) भी स्पेनी और इतालवी फासिस्टों से प्रेरित है। इटली के फासिस्ट काली कमीज पहनते थे। इसी की नकल करते हुए

हेडगेवार ने संघ के कार्यकर्ताओं को काली टोपी पहनायी। दुनिया में अगर इटली के फासिस्टों की पहचान 'काली कमीज' और स्पेन के फासिस्टों की पहचान 'भूरी कमीज' वालों के रूप में बनी थी तो संघियों में अपनी पहचान 'खाकी निकर' और 'काली टोपी' वालों के रूप में कायम की।

अब आइये, संघ परिवार के 'राष्ट्रवादी' 'स्वदेशी' के आर्थिक चिन्तन और राजनीतिक अवधारणाओं की असलियत जानने से पहले उसके प्रमुख सिद्धान्तकार माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उर्फ गुरूजी की 'अनमोल' लेखनी और वाणी से कुछ अंश उद्धृत कर हिटलर और मुसालिनी की विचारधारा और कारगुजारियों में अद्भुत मेल देखें।

## हिटलर-मुसोलिनी से अद्भुत मेल

हेडगेवार आर.एस.एस. के प्रमुख संस्थापक जरूर थे पर 'सिद्धान्तकार' का दर्जा तो गोलवलकर को ही दिया जा सकता है। 1939 में 77 पृष्ठों वाली गोलवलकर की पहली (शायद एकमात्र) किताब छपी -'वी,ऑर अवर नेशनहुड डिफाइण्ड'। आगे लकर 'बंच ऑफ थॉट्स' के नाम से उनके भाषणों आदि का एक संकलन तथा छह खण्डों में 'श्री गुरुजी समग्र दर्शन' भी छपे लेकिन योजनाबद्ध ढंग से खुद लिखी गयी गुरुजी की अकेली किताब 'वी, ऑर अवर नेशनहुड...' ही है। एक समय गोलवलकर की यह किताब संघियों के लिए गीता के समान थी, लेकिन यह पोलपट्टी खुल गयी कि आर.एस.एस. के विचारों और हिटलर-मुसोलिनी के विचारों में मेल है और इस संगठन को हिटलर के 'स्टॉर्म ट्रूपर्स' (तूफानी दस्तों) की तरह के संगठन के रूप में खड़ा करने की कुयोजना है तो खुद गोलवलकर ने ही इस किताब का प्रकाशन बन्द करवा दिया।

जिस वर्ष गोलवलकर की यह पुस्तक प्रकाशित हुई उसी वर्ष हेडगेवार ने उन्हें सरकार्यवाह घोषत किया था। हेडगेवार खुद अपनी सभाओं में इस पुस्तक से हवाले दिया करते थे। इस पुस्तक के एक अंश में हिटलर के जर्मनी का गुणगान देखिए:

*"आज दुनिया की नजरों में सबसे ज्यादा जो दूसरा राष्ट्र है, वह है जर्मनी। यह राष्ट्रवाद का बहुत ज्वलन्त उदाहरण है। आधुनिक जर्मनी कर्मरत है तथा जिस कार्य में वह लगा हुआ है, उसे काफी हद तक उसने हासिल भी कर लिया है... पितृभूमि के प्रति जर्मन गर्वबोध, जिसके प्रति उस जाति का परम्परागत लगाव रहा है, सच्ची राष्ट्रीयता का जरूरी तत्व है। आज वह राष्ट्रीयता जाग उठी है तथा उसने नये सिरे से विश्वयुद्ध छेड़ने की जोखिम उठाते हुए अपने "पुरखों के क्षेत्र" पर एकजुट, अतुलनीय, विवादहीन, जर्मन साम्राज्य की स्थापना का ठान लिया है।..."*

(गोलवलकर, पूर्वोक्त पृष्ठ 34-35)

**आगे देखिये:**

*"... अपनी जाति और संस्कृति की शुद्धता बनाये रखने के लिए जर्मनी ने देश से सामी जातियों-यहूदियों का सफाया करके विश्व को चौंका दिया है। जाति पर गर्वबोध यहां अपने सर्वोच्च रूप में व्यक्त हुआ है। जर्मनी ने यह भी बता दिया है कि सारी सदिच्छाओं के बावजूद जिन जातियों और संस्कृतियों के बीच*

*मूलगामी फर्क हों, उन्हें एक रूप में कभी नहीं मिलाया जा सकता। हिन्दुस्तान में हम लोगों के लाभ के लिए यह एक अच्छा सबक है (गोलवलकर, पूर्वोक्त, पृ.35)।"*

कितना अनोखा मेल है हिटलर के वृहत्तर जर्मनराष्ट्र और 'हिन्दू राष्ट्र' की संघ परिवार की अवधारणाओं, राष्ट्रीय गर्वबोध में। क्या संघ परिवार का अफगानिस्तान, इरान से लेकर पाकिस्तान, भारत, बर्मा, श्रीलंका, नेपाल आदि सभी देशों को मिलाकर बनने वाला 'अखण्ड भारत' का नक्शा उसी ढंग से नहीं बनाया है जिस तरह हिटलर ने आस्ट्रिया, प्रशा, बवारिया तथा चेकोस्लोवाकिया आदि राज्यों को मिलाकर बनाया था और जिस तरह गुजरात में मुसलमानों का सफाया अभियान चला है क्या वह जर्मनी में यहूदियों के सफाये की याद नहीं दिलाता।

संघ परिवार के 'हिन्दू राष्ट्र' की एक और झलक देखिये:

*"... जाति और संस्कृति की प्रशंसा के अलावा मन में कोई और विचार न लाना होगा, अर्थात हिन्दू राष्ट्रीय बन जाना होगा और हिन्दू जाति में मिलकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को गंवा देना होगा, या इस देश में पूरी तरह से हिन्दू राष्ट्र की गुलामी करते हुए, बिना कोई मांग किये, बिना किसी प्रकार का विशेषाधिकार मांगे, विशेष व्यवहार की कामना करने की तो उम्मीद ही न करें: यहां तक कि बिना नागरिकता के अधिकार के रहना होगा। उनके लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ना चाहिए। हम एक प्राचीन राष्ट्र हैं। हमें उन विदेशी जातियों से जो हमारे देश में रह रही हैं उसी प्रकार निपटना चाहिए जैसे कि प्राचीन राष्ट्र विदेशी नस्लों से निपटा करते हैं।"*

(गोलवलकर, वही, पृष्ठ 47-48)

**आगे भी:**

*"सिर्फ वे लोग ही राष्ट्रवादी देशभक्त हैं जो अपने हृदय में हिन्दू जाति और राष्ट्र की शान बढ़ाने की आकांक्षा रखते हुए इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। अन्य सभी या तो राष्ट्रीय हित के लिए विश्वासघाती और शत्रु हैं या नरम शब्दों में कहें तो मूर्ख हैं।"*

(गोलवलकर, वही, पृ. 44)

गोलवलकर के इन विचारों पर टिप्पणी करने की कोई जरूरत नहीं। अशोक सिंघल, प्रवीण तोगड़िया और संघ के अन्य धुरन्धर स्वयंसेवकों के भाषणों-बयानों से इसकी तुलना कीजिए, संघ परिवार के 'राष्ट्रवाद' का असली चेहरा खुद-ब-खुद सामने आ जायेगा।

अब आइये, संघ परिवार के 'स्वदेशी' आर्थिक चिन्तन और राजनीतिक अवधारणाओं की असलियत जानें। संघ परिवार तो शुरू से ही अमेरिकी किस्म के पूंजीवादी मॉडल और अमेरिकापरस्त विदेश नीति का समर्थक रहा है। संघ परिवार की पहली राजनीतिक शाखा जनसंघ और उसके नये अवतार के रूप में उभरी भारतीय जनता पार्टी तो हमेशा से ही खुले बाजार की नीतियों और विदेशी पूंजी की मदद से देश के आर्थिक विकास की हिमायती रही है। जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष श्यामा प्रसाद मुखर्जी नेहरू के तथाकथित समाजवादी मॉडल यानी राजकीय पूंजीवाद के मॉडल के कटु आलोचक रहे हैं। आज भी जिस बेशर्मी के साथ केन्द्र में सत्तारूढ़ भाजपा आर्थिक उदारीकण- निजीकरण की नीतियों को लागू कर रही है, विदेशी पूंजी को रिझाने के लिए बेशर्म पतुरिया जैसा नाच रही है क्या इसके बाद भी कोई भ्रम बचता है। जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के लोग नेहरू की आर्थिक नीतियों ही नहीं गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति के भी धुर विरोधी रहे हैं। अपनी अमेरिकापरस्ती को आर.एस.एस. के भोंपू 'आर्गनाइजर' ने 3 अप्रैल 1950 के अंक के सम्पादकीय में इन शब्दों में बेहयाई से स्वीकार किया था।

*"अमेरिका भारत की मदद के लिए उतना उत्साही नहीं है क्योंकि भारत कम्युनिज्म के खिलाफ उसके विश्वसंघर्ष में सहयोग नहीं कर रहा है।... हम भारत के लोग अपनी प्राचीन उदार परम्पराओं के चलते आंग्ल-अमरीकी लोगों से अधिक निकट हैं। .. ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीका के साथ जुड़कर ही एक राष्ट्र के रूप में हम अपने पूर्ण स्थान को प्राप्त कर पायेंगे।"*

यह तो पुराना उदाहरण हुआ। जब से भाजपा सरकार सत्ता में बैठी है तबसे देशी-विदेशी पूंजी की सेवा और नंगी अमेरिकापरस्ती की वह नयी-नयी मिसालें कायम कर रही है। सरकार ने जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को देशी-विदेशी पूंजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेच देने के लिए अरुण शोरी के नेतृत्व में बकायदा एक विनिवेश मंत्रालय खोल रखा है। संघ परिवार के 'स्वदेशी' का नारा

सिर्फ और सिर्फ ढकोसला है, जनता को भरमाने के लिए। स्वदेशी जागरण मंच नामक दुकान संघ परिवार ने सिर्फ इसलिए खोल रखी है कि जनता के सामने असली चेहरा छुपाया जा सके और जनता के गुस्से की धार को मोड़ा जा सके।

संघ परिवार का सांगठनिक ढांचा और उसकी कार्यप्रणाली हिटलर-मुसोलिनी की पार्टियों से हूबहू मेल खाती है। जिस प्रकार मुसोलिनी की पार्टी में किसी नये सदस्य के दाखिले के समय 'ड्यूस' (नेता) के नाम पर यह शपथ ली जाती थी कि वह बिना कोई प्रश्न किये नेता के आदेश का पालन करेगा, ठीक उसी तर्ज पर आर.एस.एस. में नये सदस्यों की भर्ती होती है। संघ के सरसंघ चालक के प्रति पूर्ण और प्रश्नहीन निष्ठा संघ की सदस्यता की पहली शर्त है। कोई जनवाद नहीं, सदस्यों को कोई अधिकार नहीं। पूरा सांगठनिक ढांचा चालकानुवर्ती (कमाण्ड स्ट्रक्चर) होती है। सबसे ऊपर सरसंघ चालक होता है। इसके बाद सरकार्यवाह होता है जिसे सरसंघ चालक नियुक्त करता है और जो अगला सरसंघ चालक होता है। इसके बाद नागपुर कार्यालय में अत्यन्त परखे हुए पूरा वक्ती चुनिन्दा कार्यकर्ताओं को लेकर अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल बनता है। इसी मंडल से विभिन्न शाखाओं के प्रमुखों, बौद्धिक शिक्षण प्रमुखों या प्रचारकों की नियुक्ति होती है। निचले स्तर के तमाम विभागों में प्रचारक ही मुख्य होता है, उसकी बात पत्थर की लकीर होती है। अपने से नीचे के कार्यकर्ताओं के प्रति उनकी कोई जवाबदेही नहीं होती। वह सिर्फ अपने से ऊपर के जिला, प्रान्त या

केन्द्रीय प्रचारकों के प्रति जवाबदेह होता है।

सांगठनिक ढांचे के बाद अब संक्षेप में आर.एस.एस. की कार्यप्रणाली की चर्चा भी।

नाजी पार्टी की तरह आर.एस.एस. का भी कोई वास्तविक संविधान नहीं है। 1948-49 में संघ पर नेहरू सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाने के बाद गोलवलकर ने एक फर्जी संविधान बनाकर गृह मंत्रालय को सौंपा था, जिसके बाद उस पर प्रतिबन्ध हटा लिया गया था। इस संविधान में संगठन के उद्देश्यों सदस्यता की शर्तों, चुनाव आदि के बारे में जो बातें लिखी गयी थीं वे आर.एस.एस. के घोषित उद्देश्यों और कार्यप्रणाली से मेल नहीं खाती थीं। प्रतिबन्ध उठ जाने के बाद इस संविधान को संघियों ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और अपने असली चरित्र के अनुसार आचरण में जुट गये।

संघ परिवार की कार्यप्रणाली के अन्य तमाम तत्व भी हिटलर-मुसोलिनी की कार्यप्रणाली से हूबहू मिलते हैं। सिर्फ एक उदाहरण काफी है। हिटलर की रैलियों और संघ परिवार की रैलियों के आयोजन के तरीके बिल्कुल एक से हैं। हिटलर जब भी जनता के बीच जाता था तो नाजी पार्टी हमेशा एक अजीब प्रकार का नाटकीय माहौल तैयार किया करती थी श्रोताओं की पहली कतार में नाजी पार्टी के तूफानी दस्ते के लोग रहते थे और आम दर्शक को नेता से काफी दूर रखा जाता था। ठीक इसी तरह आर.एस.एस. की रैलियों में भी मंच के सामने सबसे पहले दूर-दूर तक काफी अधिक स्थान घेरकर आर.एस.एस. के वर्दीधारी स्वयंसेवक बैठ जाते हैं और आम लोग दूर से उसके संरसंघ चालक की धुंधली-सी झलक भर ले पाते हैं। जिस तरह हिटलर के भारी-भरकम उत्तेजक शब्दों से भरे भाषण से उसके चारों ओर थोथी 'वीरता' और 'शौर्य' का प्रभामण्डल तैयार किया जाता था, ठीक उसी तर्ज पर संघ के नेता के भारी-भरकम थोथे आलंकारिक शब्दों से भरे भाषणों से उसकी छवि को हिन्दुओं के वीर सेनानी की तरह प्रस्तुत किया जाता है।

हिटलर की प्रचार-शैली का एक नमूना देखिये और संघ परिवार के भाषण वीरों की शैली से तुलना करिये। अपनी पार्टी के कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए वह कहता है:

*"युद्ध के प्रारंभ के लिए मैं एक प्रचार-मूलक तर्क तैयार करूंगा। कभी मत सोचो के वह सच है या नहीं, विजेता से बाद में कोई यह नहीं पूछेगा कि उसने सच कहा था या नहीं। युद्ध छेड़ने और चलाने में सहीपन का कोई मतलब नहीं है, सिर्फ जीत का मतलब है।"*

क्या अब भी कोई सन्देह है कि संघ परिवार के सांगठनिक ढांचे और उसकी कार्यप्रणाली कहां से उधार ली गयी है। यह भारतीय संस्कृति के किस अध्याय से ली गयी है?

साफ है कि 'स्वदेशी का' ढिंढोरा पीटने वालों की आत्मा विदेशी है, उनका शरीर विदेशी रक्त-मज्जा से बना है, उनका चाल-चेहरा और चरित्र सब कुछ हिटलर-मुसोलिनी की विदेशी अवधारणाओं से बना है। फिर किस मुंह से संघ वाले सोनिया गांधी को इटली की बेटी कह कर देश का नेतृत्व करने के अयोग्य होने का प्रचार करते हैं। संघीजनों, शासन किसी व्यक्ति से नहीं चला करता। तय इस बात से होता है किस वर्ग की राज्यसत्ता है? जिस वर्ग की राज्यसत्ता होती है उसकी नमुाइन्दगी करने वाली राजनीतिक पार्टी ही शासन चलाती है। जैसे कि आज देश की राजसत्ता देश के पूंजीपति वर्ग के हाथ में है। उसके हित साम्राज्यवादियों के साथ घुले-मिले हैं। इसीलिए केन्द्र की भाजपा सरकार देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हित में शासन चला रही है। सोनिया गांधी भी शासन की बागडोर सम्भालेंगी तो देशी पूंजीपतियों और तमाम साम्राज्यवादी देशों के हितों की ही चौकीदारी करेंगी। क्योंकि उनकी पार्टी कांग्रेस की भी यही नीति है। लेकिन तुम किस नैतिक हक से स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर गला फाड़ रहे हो। तुम तो हिटलर-मुसोलिनी के मानस पुत्र हो, इटली की सड़ांध के पिस्सू हो, इटली के इतिहास के सबसे अन्धेरे पन्नों के दीमक हो। तुम को शर्म मगर क्यों आयेगी!

## ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष और "सच्चे राष्ट्रवादियों" की करतूतें

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ समूचे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के दौरान आर.एस.एस. ने कभी हिस्सा नहीं लिया। उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन कभी नहीं बनना पड़ा। हेडगेवार एक बार जब जेल गये थे जब वह कांग्रेस के कार्यकर्ता थे। आर.एस.एस. के गठन के बाद 1930 में उनकी दूसरी जेलयात्रा दिखावटी थी, अपनी राष्ट्रभक्ति का एक अदद प्रमाण हासिल करने के लिए। इसे स्वयं हेडगेवार और उनके कई जीवनीकारों ने स्वीकार किया है। इसके बाद से हमेशा ही संघी अंग्रेजों के स्नेह की कामना करते रहे। संघ के कुछ स्वयंसेवकों के बारे में तो यह प्रमाण भी उपलब्ध है कि उन्होंने अपनी चमड़ी बचाने के लिए अंग्रेजों की मुखबिरी तक की। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 1931 में जब तमाम नौजवानों, स्त्रियों और पुरुषों पर लाठियां बरस रही थीं, वे जेलों में ठूंसे जा रहे थे तो संघ के प्रतापी कार्यकर्ता शाखाओं में लाठियां भांजते हुए हिन्दू राष्ट्र हासिल करने के लिए पौरुष जगा रहे थे। जब अंग्रेजी राज के खिलाफ युवाओं की कुर्बानियों से उद्वेलित होकर संघ के कुछ कार्यर्ताओं ने गुरूजी से आन्दोलन में शामिल होने की अनुमति मांगी तो बेमन से उन्होंने कहा कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन में शामिल होना संघ की नीति तो नहीं है पर यदि स्वयंसेवक स्वेच्छा से इसमें शामिल होना चाहता है तो उसे रोका भी नहीं जायेगा।

दरअसल, अंग्रेजी राज के खिलाफ संघर्ष के दौरान संघी एक दिवास्वप्न देख रहे थे। वह समझते रहे कि जिस प्रकार इटली में सोशल डेमोक्रेटों की गद्दारी से हताश श्रमिकों पर फासीवादियों के हमलों की पृष्ठभूमि में इटली के राजा, बुर्जुआ सरकार और सेना ने साजिश करके 30 अक्टूबर 1922 को मुसोलिनी के हाथ में सत्ता सौंप दी थी, उसी प्रकार इतिहास के किसी संकटपूर्ण और जनतांत्रिक ताकतों की विफलता से उत्पन्न स्थिति के मुकाम पर उनका भी भाग्योदय होगा। लेकिन हतभाग्य!

उनका यह स्वप्न साकार न हो सका। 15 अगस्त 1947 को जब राजनीतिक सत्ता पर कांग्रेसी काबिज हो गये तो गोलवलकर ने अपनी हताशा प्रकट करते हुए कहा: 15 अगस्त 1947 हिन्दू राष्ट्र के प्रति ऐसा "विश्वासघात" है जिसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। "इसी विश्वासघात का परिणाम यह हुआ कि 1947 में मुसलमानों के हाथों हिन्दू मात खा गये।" (गोलवलकर, बंच ऑफ थॉट्स, विक्रम प्रकाशन, पृष्ठ 152)

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान इन देशद्रोही अंग्रेजपरस्त हरकतों के बाद भी तुर्रा यह कि संघ परिवार वाले स्वयं को 'सच्चे राष्ट्रवादी' सच्चे देशभक्त' साबित करने के लिए झूठों

(पेज 40 पर जारी)

## बिहार और उत्तरांचल में छात्र-असन्तोष सड़कों पर

# भविष्य के पूर्व संकेत

देवेन्द्र

पिछले दिनो उत्तरांचल और बिहार में दो अलग-अलग मुद्दो पर अचानक फूट पड़ा छात्र आन्दोलन फिलहाल थम गया है। दोनों राज्यों की सरकारों और प्रशासनिक अमले को फिलहाल चैन की सांस वापस मिल गयी है। लेकिन जिस स्वत: स्फूर्त ढंग से छात्र-युवा आक्रोश सड़कों पर उमड़ आया उसने भविष्य के कुछ पूर्व संकेत दे दिये हैं।

उत्तरांचल में छात्र आन्दोलन का तात्कालिक कारण था एक छात्र का आत्मदाह। कुमाऊँ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हल्द्वानी डिग्री कालेज में छात्र लम्बे समय से छात्रसंघ चुनाव की मांग कर रहे थे। लेकिन जब देशभर में तमाम जनतांत्रिक अधिकारों को एक-एक कर हड़पने का दौर चल रहा हो तो इस मांग पर राज्य सरकार और प्रशासन भला क्यों कान देते। विश्वविद्यालय के कुलपति बी. एस.राजपूत की निरंकुश कार्यशैली से छात्रों में पहले से ही आक्रोश मौजूद था।

ये बी.एस.राजपूत वही सज्जन हैं जिनका नाम पिछले दिनों एक अकादमिक फर्जीवाड़े में सामने आया है। इनपर एक विदेशी वैज्ञानिक की थीसिस चुराकर अपने नाम से छपवाने का आरोप लगा है। हालांकि संघी काडर और मुरली मनोहर जोशी के प्रियपात्र होने के चलते इस मामले पर लीपापोती जारी है। इन महोदय ने छात्रों की मांग पर जब टालू रवैया जारी रखा और शासन भी कान में तेल डाले रहा तो दबाव बनाने के लिए भुनेश नामक एक छात्र ने आत्मदाह की घोषणा कर दी। इस घोषणा को भी प्रशासन ने गंभीरता से नहीं लिया। नतीजतन बुरी तरह झुलस जाने से उस छात्र की मौत हो गयी। इसकी खबर फैलते ही हल्द्वानी ही नहीं बल्कि कुमाऊं और गढ़वाल मण्डल के अधिकांश शहरों-कस्बों में छात्र युवा आन्दोलित हो उठे। स्वत: स्फूर्त ढंग से छात्रों ने जगह-जगह चक्का जाम किया, रैलियां और प्रदर्शन आयोजित किये। लगभग एक हफ्ते तक सरकार और प्रशासनिक अधिकारियों की नींद हराम रही।

अभी उत्तरांचल में छात्रों के आंदोलन की आग सुलग ही रही थी कि बिहार में भी छात्रों का स्वत:स्फूर्त विस्फोट शुरू हो गया। यहां इसका तात्कालिक कारण था बेगूसराय जिले में कुछ निर्दोष नागरिकों और पटना में तीन बेगुनाह छात्रों की पुलिस द्वारा फर्जी मुठभेड़ में ठंडी हत्याएं। इस पुलिसिया कारनामे ने छात्रों के भीतर पहले से ही सुलग रही असंतोष की आग को हवा दे दी। स्वत:स्फूर्त ढंग से भारी संख्या में छात्र सड़कों पर उतर आये। आक्रोश इतना जबर्दस्त था कि छात्रों ने पटना सहित कई जिलों में पुलिस पर जबर्दस्त पथराव किये, सरकारी वाहनों, इमारतों व अन्य सरकारी सम्पत्ति को नष्ट किया। शासन-प्रशासन को रक्षात्मक रुख अख्तियार करने पर बाध्य होना पड़ा। पिछले तेरह सालों से तमाम राजनीतिक उठापटक के बीच अविचल राजपाट सम्हालने वाले लालू यादव के माथे पर पहली बार सचमुच चिन्ता की लकीरें दिखायी दी। 1974 के बिहार आन्दोलन के तजुर्बेकार और सियासत के इस चतुर खिलाड़ी ने यह भांपने में चूक नहीं की कि दमन की कोई भी कार्रवाई आन्दोलन की चिंगारी को लपटों में तब्दील कर सकती है। इसलिए होशियारी से काम लेते हुए उनकी सरकार ने पुलिस महकमे की नाराजगी मोल लेकर भी गैरजरूरी बलप्रयोग की इजाजत नहीं दी।

बिहार और उत्तरांचल दोनों ही जगहों के

## कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में भी छात्रों का आक्रोश फूटा

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा में भी छात्रों के भीतर सुलग रहा आक्रोश उस समय फूट पड़ा जब प्रशासन ने हॉस्टल फीस में बढ़ोत्तरी के खिलाफ उठी छात्राओं की आवाज को कुचलने के लिए पुलिसिया दमन पर उतारू हो गया। विगत 22 जनवरी 03 को विश्वविद्यालय की छात्राएं हॉस्टल फीस कम करने की मांग करते हुए उपकुलपति के दफ्तर पर धरना दे रही थीं। पर उपकुलपति महोदय ने इस वाजिब मांग पर कान देने के बजाय लाठीचार्ज करवा दिया। नेतृत्व कर रही छात्राओं को बालों से घसीटते हुए जीपों में ठूंस लिया गया। छात्राओं के साथ खींचमखांच में कुछ छात्र-नेत्रियों के कपड़े तक फट गये। बारह छात्र नेत्रियों को गिरफ्तार किया गया। प्रशासन ने यह कार्रवाई छात्राओं को आतंकित करने के लिए की जिससे भविष्य में वे जुबान न खोल सकें। छात्राओं के इस संघर्ष का नेतृत्व जागरूक छात्र मोर्चा कर रहा था।

अगले दिन 23 जनवरी को अखबारों में खबर पढ़कर सोनीपत के छात्र भी आक्रोशित हो गये। वहां **दिशा छात्र संगठन** के नेतृत्व में जाट कालेज और हिन्दू कालेज के छात्र सड़कों पर उतर आये। कुछ देर तक चक्का जाम करने के बाद सैकड़ों छात्रों का जुलूस डी.सी.कार्यालय पहुंचा और कुरुक्षेत्र में छात्राओं के आंदोलन के दमन और दुर्व्यवहार के खिलाफ जमकर नारेबाजी की और डी.सी. को ज्ञापन सौंपा। ज्ञापन में दोषी पुलिस कर्मियों पर कार्रवाई करने, घटना की न्यायिक जांच कराने व फीस बढ़ोत्तरी वापस लेने की मांग की गयी थी। छात्रों के जुलूस व धरने की अगुवाई 'दिशा' के अनिल, टोनी, प्रवीण, राजेश, दीपक और पवन आदि ने की। उधर कुरुक्षेत्र में भी दमन की कार्रवाई के खिलाफ छात्र-छात्राओं में जबर्दस्त आक्रोश फैल गया था। गैर शिक्षण कर्मचारी व मेस कर्मचारी तक प्रशासन के बर्बर व्यवहार के खिलाफ विश्वविद्यालय के मुख्य कार्यालय के सामने धरने पर बैठ गये। उपकुलपति व प्रशासन ने मामले की नजाकत को देखते हुए घटना के जांच की कमेटी बैठाने का निर्णय ले लिया। और पुलिसिया कार्रवाई के लिए छात्राओं से माफी मांग ली। उपकुलपति महोदय ने छात्राओं की मांगों पर भी विचार के लिए एक कमेटी बैठाने की घोषणा की। इसके बाद जाकर छात्र-छात्राओं का आक्रोश फिलहाल शान्त हो सका। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की यह घटना भी बताती है कि छात्र आबादी के भीतर ही भीतर किस तरह आक्रोश घना होता जा रहा है।

आन्दोलनों में एक बात खासतौर पर गौरतलब थी कि ज्यादातर जगह छात्रों के आक्रोश का निशाना सिर्फ सरकारी सम्पत्ति बनी। इससे साफ जाहिर है कि उनका गुस्सा हुकूमत के खिलाफ केन्द्रित था। सरकारी सम्पत्तियों को उन्होंने हुकूमत का प्रतीक समझकर नष्ट किया, जैसा कि दुनियाभर में छात्र-युवा आन्दोलनों के दौरान अक्सर देखने में आया हैं। दोनों जगहों के आन्दोलन कोई संगठित आन्दोलन नहीं थे। अलग-अलग स्थानों पर हो रही छात्रों की कार्रवाइयों के बीच कोई तालमेल नहीं था। यह हुकूमत के खिलाफ केन्द्रित एक स्वत: स्फूर्त विस्फोट था इसमें अपने आप में भविष्य के संकेत पढ़े जा सकते हैं।

जैसाकि हर सम्भावनासम्पन्न स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों के दौरान देखने में आया है कि हर प्रजाति के (साम्प्रदायिक, धर्मनिरपेक्ष आदि-आदि) के चुनावी मदारी फटाफट इस आन्दोलन का श्रेय लेने, इसे अपने खाते में कैश कराने और आन्दोलन को दिशाहीन करने के लिए मैदान में कूद पड़े। बिहार में आन्दोलन को 'लालू हटाओ' आन्दोलन में बदलने की कवायद शुरू हो गयी और उत्तरांचल में भी मुद्दों की तलाश में हाथ-पैर मार रही भाजपा को नारायण दत्त तिवारी की कांग्रेसी सरकार के खिलाफ एक मुद्दा मिल गया। यह टिप्पणी लिखे जाने तक चुनावी मदारियों की बेशर्म कवायदें जारी थीं।

दोनों ही राज्यों में इन आन्दोलनों के फूटने के पीछे जो तात्कालिक कारण थे, वे अहम थे, लेकिन इन्हें ही मूल कारण समझना इनके महत्व को कमतर करना होगा। इतिहास गवाह है कि अक्सर सत्ताओं को उलट-पुलट कर रख देने वाले आन्दोलनों के पीछे जो तात्कालिक कारण रहे हैं वे निमित्त रहे हैं। अक्सर होता यह रहा कि जालिम सत्ताओं के खिलाफ जनता के दिलों में धीरे-धीरे असंतोष पकता रहता है ऐसे कोई छोटी सी घटना या मुद्दा निमित्त बन जाता है और असंतोष फूट पड़ता है। ठीक वैसे ही जैसे सतह के नीचे धधकते किसी ज्वालामुखी को अचानक मुहाना मिल जाता है और लावा बह निकलता है। इसलिए बिहार और उत्तरांचल के इन छात्र आन्दोलनों के पीछे काम कर उन बुनियादी दीर्घकालिक कारणों को समझने की जरूरत है जो तात्कालिक कारणों से संवेग पाकर स्वत: स्फूर्त ढंग से फूट पड़े।

आज देशभर में व्यापक छात्र-युवा आबादी के भीतर धीरे-धीरे असंतोष गहराता जा हा है। देश के हुक्मरानों ने भूमण्डलीकरण के नाम पर जनता को जो सब्ज़बाग दिखाये थे वे अब तेजी से मुरझाने लगे हैं। निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के बारे में जो दूर की हांकी गयी थी, उसकी पोलपट्टी अब खुल चुकी है। शिक्षा का लगातार बढ़ता बाजारीकरण आम गरीब व मध्यवर्ग के अरमानों को लीलता जा रहा है। गरीब घरों के नौजवानों के लिए उच्च शिक्षा तो दूर अब माध्यमिक शिक्षा भी मुहाल होती जा रही है। आज से दस-पन्द्रह साल पहले तक गनीमत यह थी कि आम मध्य वर्ग के लोग किसी तरह जोड़-जुगाड़ कर या पेट काटकर अपने बच्चों को विश्वविद्यालय-कालेज में पढ़ा ले जाते थे। अब उनके लिए यह नामुमकिन होता जा रहा है। ऐसे में इन घरों के नौजवान मन मसोसकर कोई पार्ट टाइम नौकरी करते हुए पत्राचार के जरिये पढ़ाई करने या पालीटेक्निक आई.टी.आई. करके जितनी जल्दी हो सके कोई टेक्निकल जॉब ढूंढ़ने के लिए मारे-मारे फिरने पर मजबूर हैं। निजीकरण के चलते नाममात्र की बची सरकारी नौकरियों की आस तो आम गरीब मध्यम वर्ग का नौजवान छोड़ ही चुका है और निजी क्षेत्र में भी आलम यह है कि तमाम औद्योगिक क्षेत्रों में नौजवान डिप्लोमा लिये भटक रहे हैं। अप्रेंटिसशिप भी मुश्किल से ही मिल पा रही है। पक्की नौकी मिलना जुए में दांव जीतना जैसा हो गया है। ऐसे में सामने खड़ी भविष्य की यह नाउम्मीदी घने आक्रोश में ढलती जा रही है।

शिक्षा क्षेत्र के बाहर भी निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के जो नतीजे सामने आये हैं उनसे भी व्यापक छात्र युवा आबादी का असंतोष व्यापक होता जा रहा है। देशी-विदेशी पूंजीपतियों की बेशर्म हिमायत वाली नीतियों का नतीजा यह है कि जिस भी सीमित पैमाने पर आम जनता को सामाजिक सुरक्षा हासिल थी वह पूरी तरह हाथ से निकलती जा रही है। राज्य ने पूरी तरह अपना पल्लू झाड़ लिया है। अब राशन की दुकानों का ताना-बाना लगभग बिखर चुका है, सरकारी अस्पतालों को राज्य की मदद लगातार कम होती जा रही है। तमाम बुनियादी जरूरतों की चीजें तक आम आदमी की पहुंच से बाहर होती जा रही हैं। आम आदमी की हर सांस और हर धड़कन को बाजार की पैशाचिक शक्तियों ने अपने नियंत्रण में कर लिया है। दूसरी ओर, सत्ता का दमनतंत्र भी लगातार अधिक से अधिक चाक-चौबन्द होता जा रहा है। एक-एक कर जनतांत्रिक अधिकारों को हड़पा जा रहा है। स्कूल-कालेज, अस्पताल खोलने के नाम पर आर्थिक संकट का रोना रोने वाली सरकारें नयी-नयी जेलें खोल रही हैं, पुलिसबलों का अत्याधुनिकीकरण किया जा रहा है, 'विशिष्ट' जनों की सुरक्षा पर पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा है। विरोध की हर आवाज को तत्परता से कुचला जा रहा है।

समाज के ये आम हालात और सत्ता का उजागर होता निरंकुश चरित्र भी छात्रों-युवाओं के भीतर गुस्से की आग को हवा देते जा रहे हैं। ऐसे में कोई भी तात्कालिक कारण इस आग में घी डालने का काम कर सकती है, जैसाकि उत्तरांचल और बिहार-के ताजा छात्र आन्दोलनों में हुआ।

इन आन्दोलनों से एक उम्मीद जगाने वाली बात यह उभरकर सामने आयी है कि अब युवाओं के सब्र का प्याला छलकने लगा है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि इसके पहले भी भारत में परिवर्तनकामी आन्दोलनों की शुरूआत नौजवानों ने ही की है। अंग्रेजी शासन के दौरान 9 अगस्त, 1942 को शुरू हुए 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की मुख्य शक्ति और उसके अगुवा नौजवान ही थे। इसके बाद 1967 में पश्चिम बंगाल में उभरे नक्सलबाड़ी आन्दोलन में भी नौजवानों की अहम भूमिका रही थी। इस क्रान्तिकारी किसान आन्दोलन का ताप खेतों-खलिहानों से बाहर निकल कलकत्ता विश्वविद्यालय, जाधवपुर विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलीन परिसरों तक भी पहुंचा था, जहां से बड़ी संख्या में नौजवान इस आन्दोलन के अगुआ दस्तों में शामिल हुए थे। इसके बाद आता है 1974-77 तक का उथल-पुथल भरा दौर, जब तक तूफानी छात्र-युवा आन्दोलन गुजरात और बिहार से शुरू होकर देशभर में फैल गया था। इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा भी इस उफनते ज्वार को नहीं रोक सकी थी और आखिरकार इन्दिरा निरंकुशशाही इसमें डूब गयी।

इन आन्दोलनों में नौजवानों की महती भूमिका को याद करते समय हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि किस तरह एक सही क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव में व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में केन्द्रित ये आन्दोलन भटक गये या भटका दिये गये। इतिहास निर्माण में जनता की निर्णायक भूमिका में विश्वास की कमी के कारण नक्सलबाड़ी आन्दोलन का नेतृत्व क्रान्तिकारी दुस्साहसिक कार्रवाइयों की दिशा में भटक गया। क्रान्ति के बारे में मध्यवर्गीय रूमानियतभरी हड़बड़ी का रुख आत्मघाती साबित हुआ और एक संभावना/सम्पन्न क्रान्तिकारी उभार अपनी ही अन्दरूनी कमियों-कमजोरियों के चलते राज्यसत्ता के दमन के सामने बिखर गया।

1974 का आन्दोलन एक दूसरी त्रासदी का शिकार हुआ। इसमें दो राय नहीं कि इस आन्दोलन की धार व्यवस्था के खिलाफ केन्द्रित थी। शुरू में भले ही यह स्वत:स्फूर्त रहा हो लेकिन आगे चलकर यह संगठित रूप धारण कर चुका था। लेकिन इस समय देशव्यापी स्तर पर कोई क्रान्तिकारी नेतृत्व मौजूद नहीं था और नौजवानों के बीच से सूझबूझ वाले, आन्दोलन की दिशा, रास्ते और विकल्प की साफ समझ रखने वाले नेतृत्व की कतारें नहीं पैदा हो सकीं। इसी शून्य का लाभ उठाकर व्यवस्था के दूरदर्शी पहरेदार जयप्रकाश नारायण ने 'सम्पूर्ण क्रान्ति' जैसी भ्रामक अवधारणाओं की आड़ में समूचे आन्दोलन को पथ विचलित कर 'इन्दिरा निरंकुशता को हटाओ' तात्कालिक नारे के इर्द-गिर्द तमाम चुनावी मदारियों का एक घृणित अवसरवादी जमावड़ा इकट्ठा किया। इस तरह जनता पार्टी अस्तित्व में आयी थी। एक तरह से जयप्रकाश नारायण ने युवाओं से पहलकदमी छीनकर समूचे आन्दोलन के नेतृत्व को हाईजैक कर बागडोर अपने हाथ में ले ली। जनता पार्टी नामक इसी अवसरवादी जमावड़े के हाथ में 1977 के आम चुनावों में इन्दिरागांधी **(पेज 42 पर जारी)**

## एक दलित छात्र की आत्महत्या

# बेचैन करते सवाल

**सागर तिवारी**

30 अगस्त, 2002 का दिन दिल्ली विश्वविद्यालय के सबसे प्रतिष्ठित कालेजों में से एक हिन्दू कॉलेज के रुतबे पर एक ऐसा धब्बा लगा गया जिसे मिटा पाना शायद मुमकिन न हो। हिन्दू कॉलेज के बी.ए. (ऑनर्स) अंग्रेजी, प्रथम वर्ष के एक दलित छात्र ने सल्फास की गोलियां खा लीं। यह सनसनीखेज घटना अंग्रेजियत के ढांचे में ढले, औपनिवेशिक मानसिकता और दिमागी गुलामी के शिकार अंग्रेजी विभाग के अध्यापकों द्वारा उस छात्र के कथित अपमान और मानसिक उत्पीड़न का नतीजा थी।

कृतु शास्त्री नामक उस छात्र के पिता स्कूल के एक साधारण संस्कृत अध्यापक थे। साढ़े सत्रह वर्ष का कृतु अपने घर का बड़ा लड़का था और उसके साथ उसके परिवार की बहुत सी आशाएं बंधी थीं। इन्हीं आशाओं को पूरा करने के लिए उसने देशभर में विख्यात हिन्दू कॉलेज के अंग्रेजी विभाग में प्रवेश लिया। उसकी यह हसरत थी कि वह अंग्रेजी में अध्यापन कार्य करें। बारहवीं तक एक सरकारी स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के बाद आरक्षण कोटे से कृतु को हिन्दू कॉलेज में प्रवेश मिला।

यह नौजवान खेल-कूद, वाद-विवाद जैसी गतिविधियों में भी आगे रहता था। उसकी कमी यह थी कि वह सरकारी स्कूल से पढ़ा होने के कारण वह महंगे कान्वेंट स्कूलों में सिखाई जाने वाली चोंचलेबाजी नहीं जानता था। रईसों के सकूलों में न पढ़ा होने के कारण वह धारा प्रवाह अंग्रेजी नहीं बोल सकता था। उसने तो एक ऐसी दुनिया में प्रवेश किया था जो अभी उसके लिए बिल्कुल नई और अनजानी थी। वह तो इस दुनिया में एक सीधा-सादा लड़का था। उसके रंग-ढंग और पहनावे से उसकी यह कमी और भी ज्यादा "खटकने" वाली हो गयी। निम्न मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के कारण उसका पहनावा एकदम साधारण था। कॉलेज शुरू होने पर शुरू हुआ अंग्रेजी विभाग के प्राध्यापकों द्वारा उसके अपमान का सिलसिला। अंग्रेजी के अध्यापकों ने उसे यह कहना शुरू कर दिया कि अंग्रेजी पढ़ना उसके बूते की बात नहीं है और उसे विषय बदल लेना चाहिए। उसका इन अध्यापकों ने अकेले में और पूरे क्लास के सामने लगातार अपमान किया। इस मानसिक उत्पीड़न के बारे में कृतु ने अपने पिता और दोस्तों से बात की। उसके पिता ने कृतु की मानसिक स्थिति के मद्देनजर उसे अपना कोर्स बदल लेने को कहा। कृतु ने भी इस तनाव और यातना से मुक्ति के लिए यह सलाह मान ली। वह अपनी अर्जी लेकर कॉलेज अथॉरिटी के पास गया। लेकिन उसे बताया गया कि विषय बदलने का समय बीत चुका है। उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद विषय नहीं बदल सका और उसके अपमान का सिलसिला जारी रहा।

पिता के कहने पर दिल्ली नगर निगम के स्कूलों में अध्यापन के लिए जरूरी 'डायट' (DIET) की परीक्षा दी। लेकिन इस बीच हिन्दू कॉलेज में अंग्रेजी विभाग के फ्रेशर्स वेलकम समारोह में सार्वजनिक रूप से कृतु का उसके अध्यापकों द्वारा अपमान किया गया। इस घोर अपमान से उसकी मानसिक स्थिति बहुत तनावपूर्ण हो गई। लेकिन उसके अपमानों का सिलसिला अभी खत्म नहीं हुआ था। 29 अगस्त, 2002 को रोहिणी स्थित उसके विद्यालय के वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह में कृतु को सम्मानित किया जाना था। वह बेहद खुश होकर सजा-धजा स्कूल पहुंचा और खुश क्यों न होता, अपमानों के इस सिलसिले के बाद उसे कहीं सार्वजनिक रूप से सम्मान जो प्राप्त होने वाला था। लेकिन कृतु के एक गरीब दलित होने की पहचान ने यहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसे मंच पर बुलाया ही नहीं गया। इस घटना ने कृतु को अंदर से तोड़ दिया। घर लौटने के बाद वह रात भर बेचैन रहा और अगले दिन उसने सल्फास की गोलियां खाकर अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

इस तरह एक और जीवन इस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था और दि.वि.वि. के हिन्दू कॉलेज जैसी शैक्षणिक संस्थाओं की कुलीनवादी संस्कृति और सामाजिक डार्विनवादी माहौल का शिकार बन गया। जाहिरा तौर पर दलित होने के कारण कृतु को हर पल हर कदम पर जिल्लत का सामना करना पड़ा। हिन्दू कॉलेज जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं में अंग्रेजियत का चोगा ओढ़े तमाम ऐसे अध्यापक हैं जिनकी आधुनिक चमड़ी के नीचे जातिवादी, यथास्थितिवादी और प्रतिक्रियावादी मध्ययुगीन जानवर बैठा है। लेकिन यह भी उतना ही बड़ा सच है कि अगर कृतु एक अमीर दलित होता तो शायद उसे इतने अपमान का सामना नहीं करना पड़ता। अपमान उसे इस कदर तोड़ नहीं सकते थे कि वह आत्महत्या कर ले, क्योंकि उसके पीछे अपने आर्थिक पृष्ठभूमि की शक्ति खड़ी होती, जिसके बल पर वह अपने भविष्य की एक तस्वीर बना सकता था। इसके अलावा अगर वह एक कान्वेंट एजुकेटेड दलित होता तो भी उसका यह त्रासद अन्त नहीं होता। इसलिए यह बात सोचने वाली है कि कृतु की कहानी क्या महज जातिगत उत्पीड़न की कहानी है या कि यह आज के भारतीय समाज में अमीर और गरीब वर्गों के बीच लगातार बढ़ती खाई को दिखलाता है या कि यह विश्वविद्यालयों के अंग्रेजियत भरे माहौल में पनपती औपनिवेशक मानसिकता को भी बेनकाब करती है, या कि यह आज के समाज में *'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट'* और *'विनरटेक्स ऑल'* के पूंजीवादी दर्शन की पहुंच को भी दर्शाता है।

आज यह हम सबके सोचने का मुद्दा है कि जातिगत समानता की लड़ाई को क्या व्यवस्था परिवर्तन की लड़ाई से काटकर लड़ा जा सकता है? क्या दलित मुक्ति की लड़ाई को कानूनी और संवैधानिक लड़ाई से किसी मुकाम तक पहुंचाया जा सकता है? क्या संसद में दलितों के चले जाने से दलित शोषण-उत्पीड़न से मुक्त हो सकते हैं?

जी हां, कृतु जैसे लड़कों का भविष्य भी इन्हीं सवालों के समाधान में छिपा हैं। दलित राजनीति का चरम रूप से पतित अवसरवाद, थके-हारे क्रांतिकारियों द्वारा दलितों के तुष्टीकरण की अवसरवादी राजनीति से कोई आशा करना निरी मूर्खता ही होगी। समय की मांग यह है कि इस पूरे सामाजिक' आर्थिक ढांचे का एक सच्चा क्रांतिकारी विकल्प खड़ा किया जाय। ऐसा विकल्प ही दलित मुक्ति की लड़ाई को सही ढंग से लड़ सकता है। बहरहाल, फौरी तकाज़ा यह है कि कृतु शास्त्री के मामले की निष्पक्ष न्यायिक जांच कराई जाय और दोषियों को उचित सजा दी जाय। इसके लिए तमाम संगठन कुलपति और विश्वविद्यालय प्रशासन पर दबाव डाल रहे हैं। सरोकार रखने वाले तमाम व्यक्तियों ने इस मांग का समर्थन करते हुए अपने हस्ताक्षर कुलपति को सौंपे हैं लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन और कॉलेज प्रशासन ने इस मामले में बेहद असंवेदनशील रुख अपनाया है। कोई कदम उठाना तो दूर इस मामले को रफा-दफा करने की पुरजोर कोशिशें की जा रही हैं। इस मामले को इस कदर दबाया जा रहा है कि हिन्दू कॉलेज के ही कई छात्र-छात्राओं को इसकी जानकारी तक नहीं है। ●

# निराशा के अन्धेरे में उम्मीदों की मशाल जलानी होगी

नमिता

जब किसी देश की समूची नौजवान पीढ़ी का भविष्य अन्धेरी गुफाओं में भटक रहा हो और उससे बाहर निकलने की कोई राह नजर नहीं आ रही हो तो उस पीढ़ी में व्याप्त हताशा -निराशा कभी-कभी आत्मघाती राहों पर ले जाती है। आज देश के अलग-अलग कोनों से आ रही नौजवानों की आत्महत्याओं की खबरें इसी स्थिति का आइना हैं।

पाठक भूले नहीं होंगे कि किस तरह भविष्य के अन्धेरों से जूझते-जूझते चन्दन भट्टाचार्य नामक एक नौजवान ने पिछले पन्द्रह अगस्त के दिन पटना में अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्मदाह कर लिया था। इक्कीस वर्षीय इस नौजवान ने यह आत्मघाती कार्रवाई गुपगुच ढंग से नहीं की थी। कई दिन पहले से उसने अपनी जान-पहचान के लोगों ही नहीं प्रशासनिक अधिकारियों को भी खबर कर दी थी कि उसकी मागें पूरी न होने की सूरत में वह आत्मदाह कर लेगा।

क्या थी उसकी मांगे? चन्दन के अध्यापक पिता को सात साल से वेतन नहीं मिला था। नतीजतन बेहतर इलाज के अभाव में उसकी मां उसकी आंखों के सामने चल बसीं। पैसे की तंगी के कारण उसे खुद बी.ए. की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। सात सालों से अपने पिता की बेबसी को वह देखता रहा। वेतन देने के बिहार सरकार के आश्वासनों से वह उम्मीद- नाउम्मीद के बीच हिचकोले खाता रहा। अपनी ताकतभर उसने जीवन-समर में लगातार जूझने की कोशिश की। लेकिन- आखिरकार वह टूट गया। जिन्दगी के बेरहम थपेड़ों ने उसके ज़ेहन में जीने के अहसास और मौत का फर्क मिटा दिया। हताशा-निराशा की अतल गहराइयों में डूबकर उसने एक दिन आत्मघाती फैसला ले लिया। समूचे प्रशासनिक अमले को उसके फैसले के बारे में पता था लेकिन वे तो 'आजादी' का जश्न मनाने में मशगूल थे। 15 अगस्त के दिन, जब देश का लफ्फाज प्रधानमंत्री लाल किले की प्राचीर से देश को महाशक्ति बनाने की डींगे हांक रहा था तो ठीक उसी समय पटना में चन्दन का शरीर धू-धू जल रहा था। चन्दन जैसे दो और नौजवानों ने उसी दिन यह कदम उठाया था लेकिन उन्हें बचा लिया गया।

चन्दन के आत्मदाह के ठीक चार दिन बाद दिन के उजाले में गाजियाबाद जिले के हिण्डन नदी के पुल के खम्भे पर राजेश नाम के एक नौजवान ने फांसी लगा ली। राजेश बेरोजगारी से परेशान था और चन्दन की तरह ही इस बेरहम व्यवस्था के खिलाफ अपनी अकेली लड़ाई में हताशा के उस मुकाम पर पहुंच गया था जहां जीने की कोई वजह नहीं दिखायी पड़ती।

ये दो हाल की घटनाएं हैं। जबसे देश में नयी आर्थिक नीतियां लागू होनी शुरू हुई हैं तब से आत्महत्याओं का यह सिलसिला काफी तेज रफ्तार से आगे बढ़ा है। कभी छंटनीशुदा बेरोजगार मजदूरों की, कभी बाजारकेन्द्रित खेती में होने वाली तबाही से बर्बाद किसानों की, तो कभी दहेज जुटा पाने में अक्षम पिताओं की तो कभी किसी अन्य तरीके से जिन्दगी की मार खाये लोगों द्वारा आत्महत्याएं करने की घटनाएं रोज-रोज सामने आ रही हैं।

किसी समाज में जब आत्महन्ता प्रवृत्तियां जोर पकड़ ले तो यह उस समाज के गतिरोध -ठहराव और चतुर्दिक फैली हताशा-निराशा का ही आइना होती हैं। आज हमारा समाज इसी दुर्भाग्यपूर्ण मुकाम पर खड़ा है। आधी सदी से भी अधिक समय गुजर चुका हैं जब मुल्क में कथित आजादी आयी थी। देश की आम जनता के लिए ये गुजरे साल लगातार टूटती उम्मीदों के साल रहे हैं। लेकिन 1980 के दशक के पहले तक नाउम्मीदी लोगों द्वारा आत्मघाती राहों पर चल पड़ने की खबरें अपवाद ही होती थीं। इस समय तक किसी न किसी रूप में जनता की नाउम्मीदी सामाजिक संघर्षों के रूप में फूटती नजर आती थी। इस दौर में देशभर में छात्रों-युवाओं और दूसरे मेहनतकश तबकों के व्यापक एवं जुझारू जनान्दोलन भी हो रहे थे। इस कारण निजी धरातल पर महसूस होने वाली नाउम्मीदी की बर्फ सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों की ऊष्मा से पिघलती रहती थी। लेकिन आज हालात बेहद कठिन और दुर्भायपूर्ण बने हुए हैं। देश के हुक्मरान जिन लुटेरी नीतियों पर चल रहे हैं उनसे आम आदमी की जिन्दगी की दुश्वारियां उन हदों तक पहुंच चुकी हैं। जहां जीने और मरने की दूरियां लगातार कम होती जा रही हैं दूसरी ओर चतुर्दिक विकल्पहीनता का घना कुहासा छाया हुआ है। इस स्थिति को बदलने के लिए बदलाव की ताकतों द्वारा विभिन्न मोर्चो पर जो प्रयास किये जा रहे हैं उनसे व्यापक समाज के स्तर पर कोई उम्मीद जगती फिलहाल नजर नहीं आ रही है। इन्हीं हालात में कोई चन्दन, कोई राजेश जीवन संघर्ष में अकेले-अकेले जूझते हुए टूट जा रहे हैं।

अगर इन हालात को बदलना है तो हताशा-निराशा और सामाजिक विकल्पहीनता के इस अन्धेरे में हमें नयी उम्मीदों की मशाल जलानी होगी। भगत सिंह के शब्दों में कहें तो जड़ता और गतिरोध की इस स्थिति में हमें क्रान्तिकारी स्पिरिट ताजा करनी होगी। समाज का सत्तर फीसदी शोषित-उत्पीड़ित हिस्सा हम नौजवानों के शौर्य पर उम्मीदें लगाये हुए हैं। क्या ऐसे में देश के हर बहादुर, संजीदा और इंसाफ-पसन्द नौजवान का यह फर्ज नहीं बनता कि वह भगत सिंह की राह पर चलते हुए समाज को आगे बढ़ाने और इस अन्धेरे को मिटाने का रास्ता दिखाये।

जब तक एक क्रान्तिकारी मुहिम इस पूरे सामाजिक-आर्थिक ढांचे को बदलने के लिए तेज नहीं होती तब तक इस देश के बेरोजगार गरीब नौजवानों की बेचैनी और घुटन व्यवस्था परिवर्तन की कोशिशों के बजाय आत्महत्या की कोशिशों में तब्दील होती रहेगी। आज भारत इतिहास के अगले चरण में जाने के लिए नौजवानों से उनके हिस्से का खून मांग रहा हैं अगर यह मांग अनसुनी रही तो हर दिन इस देश के हर कोने में कोई चन्दन-कोई राजेश जलता रहेगा। ●

# ज़िन्दगी की जीत में यक़ीन की एक हार
# अर्चना की आत्महत्या से उठे जलते सवाल

**अभिनव**

*"तू ज़िन्दा है, तू जिन्दगी की जीत में यकीन कर...*

आज घुप्प अंधेरा है दिमाग सुन्न है पर ... मुझे कोई चाहिए जिससे मैं अपनी जिन्दगी की सारी समस्याओं को ज्यों का त्यों बता सकूं क्योंकि सब पूछते हैं, क्या है, क्यों उदास हो? और मैं लगातार टालती हूं अपना निर्णय है इसलिए ऐसी बदतर स्थिति बताने में लगता है अपनी ही हार है पर है तो। अक्सर निर्णयों के विभिन्न प्रभाव बाद में नजर आते हैं। पर एक आराम की जिन्दगी के लिए समझौता नहीं। या तो पूरी मौत या पूरी जिन्दगी। आधा-अधूरा कुछ नहीं जिस दिन लगेगा बहुत थक गयी उस दिन बस बहुत आराम का रास्ता चुन लूंगी, फिलहाल हिम्मत है थकने का।"

यह अर्चना की डायरी के कुछ पन्ने हैं जिसने वर्ष 2002 के पटाक्षेप के साथ ही, जब नये वर्ष की भोर की किरनें फूट रही थीं, अपने हाथों अपने जीवन का पटाक्षेप कर लिया। नहीं, अर्चना कोई निराशावादी लड़की नहीं थी उसकी दोस्तों के मुताबिक, कभी वह साहस और उमंग से लबरेज एक जिन्दादिल लड़की हुआ करती थी। ब्राह्मण परिवार की जातिगत रूढ़ियों से बगावत करके उसने एक कथित प्रगतिशील दलित बुद्धिजीवी सूरज प्रकाश से शादी की थी। सूरज प्रकाश दिल्ली विश्वविद्यालय के श्री वेंकटेश्वर कालेज में प्रवक्ता है। लेकिन अर्चना कोई पति पर अश्रित घरेलू औरत नहीं थी। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की शोध छात्रा होने के साथ ही वह खजूरी (पूर्वी दिल्ली) के सरकारी स्कूल में स्थायी शिक्षिका भी थी। प्रबुद्ध, साहसी और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने के बावजूद, तथा शादी के बाद जीवन में व्याप्त, दिमाग सुन्न कर देने वाले घुप्प अंधेरे में भी "जिन्दगी की जीत में यकीन" करने के बावजूद, अर्चना हार गयी। एक पूरी जिन्दगी के लिए लड़ते हुए थककर वह एक पूरी मौत तक जा पहुंची। अर्चना की मौत दरअसल पुरुष वर्चस्व के दमघोंटू माहौल में उन तमाम स्वप्नों-आकांक्षाओं-कामनाओं की एक प्रातिनिधिक मौत थी, जिन्हें पाने की कोशिश में मध्यवर्ग की तमाम जागरूक और स्वावलम्बी स्त्रियां अलग-अलग, अकेले-अकेले जूझती हैं और फिर थक-हारकर मौत या मौत जैसी जिन्दगी चुन लेती है। अर्चना की आत्महत्या हमारे पुरुषवर्चस्ववादी समाज के ढांचे पर अधिक गहन गंभीर प्रश्नचिन्ह उठाने के साथ ही बौद्धिक जगत के उन बहुतेरे प्रगतिशील बात-बहादुरों को भी कठघरे में खड़ा करने का काम करती है जो सामाजिक मुक्ति नारी मुक्ति और दलित मुक्ति पर व्याख्यानों-आख्यानों-प्रत्याख्यानों का तूमार बांध देते हैं, लेकिन निजी जीवन में महज तरक्की की सीढ़िया चढ़नें को आतुर एक सुविधाजीवी होते हैं और अपने घरों में स्त्रियों की नजरों में एक आततायी पुरुष-सत्ता का प्रतिनिधि होने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होते।

अर्चना ने जातिगत बंधनों को तोड़कर, विद्रोह करके सूरज प्रकाश से शादी की। शादी के बाद ही कथित प्रगतिशील युवा दलित बुद्धिजीवी का असली चेहरा सामने आया-बोहेमियन जीवन, शराबखोरी, अर्चना से घरेलू गुलामी की हर कसौटी पर पूरी-पूरी खरी उतरने की अपेक्षा और ऐसा न होने पर लगातार गाली-गलौज व मानसिक शारीरिक उत्पीड़न। अर्चना इस सारी नर्क कथा को बस डायरी के पन्नों पर दर्ज करती रही। यह डायरी उसकी एक अन्तरंग सहेली के पास है और ये पन्ने ही सूरज प्रकाश के हत्यारे चेहरे को उघाड़ने वाले एकमात्र साक्ष्य हैं। अर्चना स्थिति में सुधार के लिए जूझती रही। उसकी दारुण यंत्रणा से अंतरंग सहेलियां पूरी तरह अवगत नहीं थी। बस कुछ एक को हल्का सा अहसास था। किसी को बताने में अर्चना को ऐसा लगता था कि यह स्वयं उसकी हार होगी क्योंकि उसने शादी स्वयं, विद्रोह करके की है। 31 जनवरी 2002 की आधी रात को एक पार्टी से लौटकर अर्चना को घर छोड़ने के बाद सूरज प्रकाश एक दूसरी पार्टी में चला गया। चार बजे भोर में अर्चना ने फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली।

सूरज प्रकाश अभी भी फरार है और संभवत: दिल्ली में ही यहां-वहां छिपे रहकर अपनी जमानत और केस को रफा दफा करवाने की कोशिशें कर रहा है। अर्चना की मित्रों की काफी दौड़धूप के बाद सूरज प्रकाश के विरुद्ध आत्महत्या के लिए पत्नी को बाध्य करने का मामला घटना के दस दिनों बाद, दस जनवरी को दर्ज हो सका। मीडिया ने भी, रहस्यमय ढंग से इस घटना को ब्लैकआउट किया। 17 जनवरी को पहली बार यह घटना अखबारों में प्रकाशित हो सकी। अर्चना की डायरी सूरज प्रकाश के खिलाफ एक स्पष्ट प्रमाण है, लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन ने इन पंक्तियों के लिखे जाने तक (यानी 22 जनवरी तक) उसे निलम्बित भी नहीं किया है। यह समाज और प्रशासन के पुरुषवर्चस्ववादी नजरिए का ही द्योतक है। अधिकांश लोग तो पुरुष के मन मुताबिक अपने को न ढाल पाने वाली स्त्री को सजा के काबिल ही समझते हैं। और यह सजा मौत भी हो तो कोई अधिक नहीं।

विश्वविद्यालय के प्रबुद्ध शिक्षक छात्र समुदाय में इस घटना को लेकर तीव्र आक्रोश है और सूरज प्रकाश के विरुद्ध कार्रवाई के लिए संगठित दबाव बनाने की तैयारियां भी जारी है। लेकिन यहां भी कई सवाल उठते हैं। अर्चना की मृत्यु के करीब एक पखवाड़े बाद कैम्पस में कुछ सुगबुगाहट की शुरुआत हुई। एक बुजुर्ग प्राध्यापक के अनुसार, आज के पन्द्रह वर्षों पहले यदि ऐसी कोई घटना घटती तो शिक्षकों-छात्रों के बीच आन्दोलन जैसा माहौल होता और छात्राएं सड़कों पर आ जातीं। दरअसल पूरे समाज के साथ ही कैम्पसों में भी प्रतिगामी शक्तियों का जो वर्चस्व स्थापित हुआ है और प्रतिक्रिया का जो आम माहौल बना है, वही इस ठण्डी तटस्थता और मुर्दानगी की जड़ में है। इस माहौल को श्रमसाध्य कोशिशों से ही बदला जा सकता है और यह समय की मांग है। दिल्ली विश्वविद्यालय के परिवेश का हाल में कुलीनीकरण हुआ है। "खुलेपन" की बयार ने निजी बुर्जुआ स्वच्छन्दता के आग्रहों और समाज विमुख आत्मग्रस्ता का घटाटोप निर्मित किया है। जिसमें आम छात्र-छात्राओं की जनतांत्रिक चेतना का तेजी से क्षरण हुआ है। इस ठण्डी तटस्थता के विरुद्ध संघर्ष छात्र आन्दोलन, स्त्री आन्दोलन, जनवादी अधिकार आन्दोलन और सांस्कृतिक आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण एजेण्डा है। इससे अब और अधिक मुंह नहीं चुराया जा सकता।

साथ ही, सोचने के लिए कुछ और भी अहम सवाल है। सूरज प्रकाश स्वयं वामपंथी विचारों को मानने वाला एक दलित बुद्धिजीवी था जो छात्र जीवन से ही प्रगतिशील वाम और दलितवादी सर्किलों में डोलता रहता था। वह उन्हीं अराजक अकर्मक नकली प्रगतिशीलों में से एक था जो अपने विचारों को सामाजिक प्रतिष्ठा और तरक्की की सीढ़ियां बनाते रहते हैं, सेमिनारों से लेकर काफी हाउसों तक बहसबाजी करते रहते हैं और फिर शराब के प्यालों में अपना "तनाव" घुलाते-डुबाते रहते हैं जो नकली वामपंथी अपनी अकर्मक विमर्शवादी राजनीति से ऐसे चरित्रों को बल प्रदान करते रहते हैं, सूरज प्रकाश का 'एक्सपोजर' प्रकारान्तर से उनका भी 'एक्सपोजर' है।

ऐसे दलित बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है जो दलित उत्पीड़न की गरमागरम बातें करते हैं लेकिन लेक्चरर, अफसर या पत्रकार बनकर अभिजन समाज में शामिल होने के बाद अपने निजी और पारिवारिक जीवन में उन तमाम प्रतिगामी मूल्यों एवं विलासी जीवन शैली को अपना लेते हैं जो पुराने अभिजनों की विशिष्टता थी। स्त्रियों के प्रति भी वे उतने अत्याचारी होते हैं एक प्रसिद्ध मराठी दलित लेखक की पत्नी ने भी अपनी आत्मकथा में इस विडम्बना का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया है। हाल के वर्षों में दलित मुक्ति के जो नकली वामपंथी, एन.जी.ओ. पैरोकार पैदा हुए हैं, वे भी ऐसे ही दलित अभिजनों से ही गलबहियां डाले चल रहे हैं इन सभी को सिर्फ गरमागरम लोकरंजक बातें करनी हैं, आम दलितों की 90 फीसदी आबादी तक न तो इनकी पहुंच है न ही उनकी मुक्ति की कोई वास्तविक परियोजना। ये सभी लोग दलित मुक्ति के प्रश्न को घुमाफिराकर वर्ग संघर्ष से स्वतंत्र स्वायत्त बनाकर प्रस्तुत करते हैं। दलित बुद्धिजीवी अभिजन समाज के असली वर्ग चरित्र की यह अनदेखी आज दलित मुक्ति, स्त्री मुक्ति और सभी शोषितों की मुक्ति की व्यापक परियोजना के विखण्डन की एक साजिश के रूप में सामने आ रही है। सूरज प्रकाश जैसे स्त्रीहन्ता पतित चरित्र इसी घृणित महानाटक के प्रतिनिधि पात्र हैं। अर्चना की आत्महत्या के कारणों की शिनाख्त ऐसे चरित्रों के असली चेहरे की शिनाख्त के रूप में भी होनी चाहिए। लफ्फाजियों के घटाटोप में आज यह पड़ताल बहुत जरूरी है कि स्त्री मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के बारे में काफी गरमागरम बातें करने वाले लोग वस्तुतः कैसा निजी और पारिवारिक जीवन जीते हैं। सूरज प्रकाश जैसे प्रगतिशील मुखौटा लगाये आतताइयों और कैरियरवादियों को पहचानना होगा, तभी स्त्रियों की आधी आबादी और आम लोगों का विश्वास सही मायने में जीता जा सकता है।

अर्चना की आत्महत्या से जुड़े कुछ और अहम पहलू हैं। अक्सर कुछ लोग यह कहते पाये जाते हैं कि स्त्रियां यदि आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हों, और वे विद्रोह का साहस करें तो अपनी आजादी हासिल कर सकती हैं। अर्चना आर्थिक रूप से स्वावलम्बी थी, उसने विद्रोह करके जातिबाहर शादी की और पति के अत्याचारों के विरुद्ध भी घुटने नहीं टेके, पर अन्ततः वह हिम्मत हार गयी। क्यों? उसे लगा कि पुरुष स्वामित्ववाद के सर्वव्याप्त सामाजिक परिवेश में वह अकेली है। अर्चना की आत्महत्या एक एकाकी संघर्ष की पराजय थी। यह एक अकेले विद्रोह का त्रासद अन्त था। यह कोई एक अकेली घटना नहीं है। यह पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक संरचना में स्त्री की नियति का महज एक उदाहरण है। ऐसी घटनाएं यदि वास्तव में हमारी चेतना को झकझोरती हैं तो तात्कालिक जिम्मेदारियों के निर्वाह के साथ ही दूरगामी तौर पर हमें उस सामाजिक ढांचे को बदलने की परियोजना के बारे में सोचना ही होगा जिसमें स्त्री हर स्तर पर पुरुष उत्पीड़न की शिकार है। हर वर्ग समाज की तरह वर्तमान पूंजीवादी समाज में भी परिवार एवं विवाह की संस्थाएं ही स्त्री उत्पीड़क संस्थाएं हैं। समाज में कुछ मर्दों के उदार एवं प्रगतिशील होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल पूरे सामाजिक ढांचे और प्रभुत्वशील मूल्यों-संस्थाओं का है। विवाह एकनिष्ठ प्यार का आदर्श रूप नहीं, बल्कि स्त्री-उत्पीड़न का उपकरण है, एक संस्थाबद्ध वेश्यावृत्ति है। स्त्री पुरुष के बीच वास्तविक-एकनिष्ठ प्यार केवल उनके बीच की समानता पर ही आधारित हो सकता है, और इसके लिए एक समूतामूलक सामाजिक ढांचे का होना जरूरी है। यह वैज्ञानिक सच्चाई किसी के बद्धमूल संस्कारों को आहत कर सकती है, लेकिन सच्चाई तो सच्चाई है।

अर्चना हठपूर्वक, अकेले, अपनी बेहतर जिन्दगी के लिए जूझती रही। वह खुशहाल पारिवारिक जीवन के मृगमरीचिका के पीछे भागती रही। वह साहसी विद्रोही थी लेकिन पराजित हुई। यह पराजय अप्रत्याशित नहीं थी। अर्चना को लोक लाज की चिन्ता थी, यह भय था कि सामाजिक बंधन तोड़कर किये गये प्रेम विवाह की विफलता उसकी हार होगी, लोग उस पर हंसेंगे। काश कि अर्चना एक झिझक से मुक्त होकर अपनी लड़ाई को खुलेआम सड़क पर लाने का साहस जुटा पाती कि तब वह अकेले नहीं होती। काश, वह जान पाती कि ऐसा करके न सिर्फ वह अपनी लड़ाई को एक व्यापक लड़ाई से जोड़ देती और जीने का एक मकसद पा जाती, बल्कि वर्तमान और भविष्य की अन्य तमाम अर्चनाओं को अपने अपने तर्क के अन्धेरे तलघरों से बाहर निकलने की राह भी दिखा देती। नहीं, अर्चना को फन्दा अपने गले में नहीं डालना चाहिए था बल्कि अपनी जैसी स्त्रियों के साथ जुटमिलकर पुरुष आधिपत्यवाद के गले में डालने के लिए लोहे का एक बड़ा और मजबूत फन्दा तैयार करने के काम में भिड़ जाना चाहिए था।

(22 जनवरी 2003) ●


## घोषणा पत्र: प्रपत्र-1

| | |
|---|---|
| पत्रिका का नाम | - आह्वान कैम्पस टाइम्स |
| आवर्तिता | - त्रैमासिक |
| भाषा | - हिन्दी |
| प्रकाशन स्थान | - गोरखपुर |
| प्रकाशक/स्वामी का नाम | - आदेश सिंह |
| राष्ट्रीयता | - भारतीय |
| पता | - 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर |
| मुद्रक का नाम | - आदेश सिंह |
| राष्ट्रीयता | - भारतीय |
| पता | - 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर |
| सम्पादक का नाम | - अभिनव |
| राष्ट्रीयता | - भारतीय |
| पता | - 'संस्कृति कुटीर' कल्याणपुर, गोरखपुर |
| मुद्रणालय का नाम | - आफसेट प्रेस इलाहीबाग, गोरखपुर |

मैं आदेश सिंह, यह घोषणा करता हूं कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आदेश सिंह
(प्रकाशक/मुद्रक/स्वामी)

# आज के भारत में अलगाव का सवाल

*जैसा कि पाठकों को मालूम है कि इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम 'आह्वान' टीम के साथियों और अन्य संवेदनशील-चिन्तनशील युवाओं द्वारा प्रस्तुत उन विचारपरक लेखों-टिप्पणियों को प्रकाशित करते है जिनमें समाज के किसी ज्वलन्त प्रश्न, किसी राजनीतिक-सामाजिक घटना-परिघटना या किन्हीं प्रातिनिधिक सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों-प्रवृत्तियों का दार्शनिक धरातल पर विवेचन किया गया हो। मौजूदा संक्रमणकालीन समय में नयी पीढ़ी के संवेदनशील तत्वों के मानसिक-भावात्मक जगत में एक बेचैन कर देने वाली उथल-पुथल का मौजूद रहना नितान्त स्वाभाविक है। इसी उथल-पुथल के बीच से निकलकर भविष्य को सिरजने वाले विचार व्यापक युवा आबादी के बीच भी पुष्पित-पल्लवित होते हैं जो कालान्तर में एक परिवर्तनकामी भौतिक शक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। हमें उम्मीद है कि इस स्तम्भ के जरिये 'आह्वान' के पाठक एक सामूहिक चिन्तन-प्रक्रिया के जीवन्त साझीदार बन सकेंगे।* -सम्पादक

**अभिनव सिन्हा**

अपने पिता की पीढ़ी के लोगों से जब भी 'कालेज लाइफ' के किस्से-कहानियां सुनता हूं तो एक अहसास हमेशा जेहन में उभरता है। वह दोस्तानापन, जीवनन्तता, सब कुछ उड़ेलकर रख देने वाली वह बेतकल्लुफी, रिश्तों की वह गर्माहट, सामूहिकता, युवासुलभ बेफिक्री की सतह के नीचे बहती मानवीय सामाजिक-सरोकारों की धारा-यह सब हमारी पीढ़ी में क्यों नहीं? बात यह नहीं कि आज युवाओं के बीच दोस्तियां नहीं होतीं। खूब होती हैं। पर हमेशा यह महसूस होता रहता है कि एक दूसरे को दोस्त कहनेवाले युवाओं के बीच जैसे कोई अदृश्य दीवार खड़ी है जो पूरी तरह बेतकल्लुफ होने से रोके रहती है। जीवन्तता का स्थान खोखले खिलन्दड़पने ने ले लिया है जो अक्सर एकरसता दूर करने की तरह-तरह की बचकानी ओछी तरकीबों के रूप में सामने आता है। सामूहिकता के बजाय 'है भीड़ इतनी पर दिल अकेला' की स्थिति नज़र आती है। यूं लगता है जैसे हर युवा अपने-अपने सपनों-अरमानों का गट्ठर पीठ पर लादे अपने-अपने टापुओं पर अकेले-अकेले भटक रहा है।

सचमुच, हमारी पीढ़ी एक भीषण अलगाव की शिकार है। आज यह हमारे भारतीय समाज का नग्न यथार्थ बन चुका है। फिर इससे मुंह मोड़ना भला कैसे संभव है? इसलिए हमें इस यथार्थ की गहरी पड़ताल करनी चाहिए, इसे अच्छी तरह समझना चाहिए, क्योंकि चीजों को बदलने के लिए चीजों को समझना होता है और चीजों को बदलने की प्रक्रिया में खुद को बदलना होता है।

दरअसल, व्यक्ति अपनी प्रकृति से ही एक सामाजिक प्राणी होता है। बार-बार कही गयी यह उक्ति एक घिसा-पिटा वाक्य नहीं है। व्यष्टि (Individual) समष्टि (Collective) के एक अंग के रूप में ही सर्वाधिक स्वस्थ ढंग से विकसित हो सकता है और अपनी सर्वोकृष्ट सर्जनात्मकता को प्रकट कर सकता है। मानव समाज के ऐतिहासिक विकास की लम्बी प्रक्रिया में किस तरह व्यष्टि समष्टि से अलग होता हुआ आत्मविघटनकारी हदों तक पहुंच चुका है, इसका सुन्दर एवं सारगर्भित चित्रण *मक्सिम गोर्की* ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'व्यक्तित्व का विघटन' में किया है। व्यष्टि से समष्टि की कड़ी जब विच्छिन्न होती है। व्यष्टि से समष्टि की कड़ी जब विच्छिन्न होती है तभी जाकर एक खुदगर्ज, आत्मरति का शिकार एक चरम निरंकुशवादी व्यक्तिवादी व्यक्तित्व पैदा होता है। इसी प्रक्रिया में "मेरी मर्जी..." वाली मानसिकता पनपती है। यहीं से निरंकुश व्यक्तिवादी नायकों के प्रति आकर्षण पैदा होता है, जो नायिका के प्रति 'ओवर पजेसिव' होता है। 'तू हां कर या ना कर, तू है मेरी..." के थीम सांग वाली फिल्में अगर हिट हो रही हैं तो जाहिर है कि अकेलेपन की समस्या मानसिक बीमारी की हदों तक समाज में व्याप्त हो चुकी है। आज के युवा वर्ग के इस बदले हुए मानस को समझना सामाजिक बदलाव में सचेत रूप से लगे युवाओं के लिए बेहद जरूरी है।

दरअसल, आज युवाओं के बीच समाज में सुरक्षित-सम्मानजनक मुकाम हासिल करने के लिए अन्धी होड़ मची हुई है। जैसे-जैसे भविष्य की अनिश्चितता बढ़ती जा रही है वैसे-वैसे छात्रों युवाओं की व्यापक आबादी अपनी सहज स्वाभाविक सामाजिकता-सामूहिकता से दूर आत्मकेन्द्रण की गुफा में कैद होती जा रही है। दरअसल, अपनी निज की समस्या को एक व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में न देख पाने के कारण वे एक जुआरी मानसिकता में सामाजिक मुकाम हासिल करने के लिए दांव खेल रहे हैं। सामाजिक जीवन की यह असुरक्षा-अनिश्चितता उनके भावनात्मक जगत को भी असुरक्षित बना रही है। नतीजतन एक घातक अकेलापन उन्हें अपनी चपेट में ले रहा हैं इस त्रासद स्थिति का शिकार युवा मन सिनेमा के पर्दे पर जब शाहरुख खान जैसों द्वारा अभिनीत चरित्रों को देखता है तो उसका अवचेतन मन अनायास ही उससे तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

छात्र-युवा वर्ग ही इस अलगाव का शिकार नहीं है और न ही यह केवल महानगरीय जीवन का यथार्थ है। यह ग्रामीण जीवन को भी अपनी चपेट में ले चुका है। औद्योगिक मजदूर वर्ग के साथ-साथ ग्रामीण मेहनतकश आबादी तक आत्मघाती अलगाव पसर चुका है। गांवों का रससिक्त रागात्मक जीवन व किसानी सामुदायिकता, की तमाम संस्थाएं तेजी से अतीत की चीजें बनती जा रही हैं। गांव की चौपालों का स्थान बाजारों ने ले लिया है। चैती-फाग, आल्हा-लोरिकायन गाने वाले अब मुश्किल से ही मिल पाते हैं। अब गांवों में भी केबुल कनेक्शन पहुंच चुके हैं। तिलक-विवाह, छठी-बरही और अन्य खुशी

के मौकों पर अब सोहर-कजरी कम ही सुनायी पड़ती है। इसकी जगह अब अब बर्थडे पार्टी और आर्केस्ट्रा की संस्कृति तेजी से पहुंचती जा रही है। शहरों के करीब बसे मौकों में तो डीजे तक पहुंच रहे हैं। इन परिवर्तनों को घटित होना ही था। ये समाज विकास की स्वाभाविक परिणतियां हैं। आज इन पर रोने-बिसूरने या छाती पीटने से कोई लाभ नहीं। पुरानी सामूहिकता और रागात्मकता आज वापस नहीं लौट सकती। लेकिन बुर्जुआ अलगाव भी मनुष्य की नियति नहीं है। समाज एक नयी उन्नत जमीन पर खड़ी सामूहिकता की ओर आगे बढ़ेगा।

भारतीय गांवों में तेजी से हो रहे ये सांस्कृतिक परिवर्तन दरअसल पिछले पचपन सालों में देश में हुए पूंजीवादी आर्थिक-सामाजिक विकास की प्रक्रिया और परिणितियों से सीधे तौर पर जुड़े हैं। 1947 में अंग्रेज उपनिवेशवादियों के हाथ से सत्ता अपने हाथों में लेने के बाद भारतीय पूंजीपति वर्ग ने पूंजीवादी विकास का जो रास्ता चुना उसने केवल आर्थिक दायरे में ही नहीं वरन सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भी तमाम पुरानी संरचनाओं को तहस-नहस कर नयी संरचनाओं को जन्म दिया है। बीती सदी के आखिरी दशक में, जबसे भूमण्डलीकरण के नाम पर देशी-विदेशी पूंजी की नंगी लूट की नीतियों पर अमल शुरू हुआ, देश में सांस्कृतिक बदलावों की गति भी काफी तेज हो गयी है। आज गांवों में जो सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं उनके लक्षण तो 1960 के दशक में ही उभरने लगे थे। इस समय तक कृषि में पूंजीवादी विकास स्पष्ट रूप से दिखायी देने लगा था। छोटे किसानों का उजड़ना, निर्वाह कृषि (Existence agriculture) यानी गुजर बसर के लिए होने वाली खेती से बाजारोन्मुख कृषि (Commercialised agriculture) में संक्रमण, यानी नकदी फसलों का भारी पैमाने पर उत्पादन और किसान आबादी का तीखा विभेदीकरण इसके ही लक्षण थे। लेकिन पिछले दस-बारह वर्षों में सर्वहाराकरण और दरिद्रीकरण की प्रक्रिया अभूतपूर्व रफ्तार के साथ आगे बढ़ी है। हमारे देश में भी उजरती गुलामों (Wage slaves) और बेरोजगारों की वैसी ही भीड़ दिखने लगी है जिसका विवरण चार्ल्स डिकेन्स ने अपने उपन्यासों में दर्ज किया है।

कहने का मतलब यह कि देश में पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप माल उत्पादन का विकास और समाज में श्रम विभाजन लगातार तीखा होता जा रहा है जो बेहद रुग्ण किस्म के अलगाव को जन्म दे रहा है। भारतीय समाज में यह परिघटना सबसे पहले शहरी मध्यवर्ग की जिन्दगी में प्रकट होती है। मध्यवर्ग के मानस और संरचना में प्रकट होने वाले इन बदलवों को हिन्दी कथा-साहित्य में 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में ही दर्ज किया जा रहा था। *समान्तर कहानी आन्दोलन* से जुड़े रचनाकारों खासकर राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश त्रयी की रचनाएं शहरी मध्यवर्गीय जीवन की एकसरता, ऊब और अलगाव को आज से तीन दशक पहले ही दर्ज कर रही थीं। भारतीय समाज में सामन्ती पार्थक्य (Segregation) तो पहले से ही मौजूद था पर अब बुर्जुआ अलगाव भी अपनी पैठ बना चुका था।

आज और आज यह महानगरीय जीवन की चौहद्दी से बाहर निकलकर औद्योगिक मजदूर वर्ग ही नहीं छोटे शहरों और गांवों की व्यापक मेहनतकश आबादी को भी अपनी चपेट में लेता जा रहा है। इसलिए आज नये सिरे से समाज के रिश्तों, आत्मिक जीवन, मनोविज्ञान और अन्य पहलुओं को समझना जरूरी हो गया है।

वैसे तो अलगाव के सिद्धान्त का इतिहास हेगेल (कुछ के अनुसार रूसो) से शुरू होता है, पर अलगाव का सम्पूर्ण और विस्तृत सिद्धान्त *कार्ल मार्क्स* की देन है। मार्क्स अलगाव को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते थे जिसके जरिये एक व्यक्ति, एक समूह एक संस्था या एक समाज अपने क्रियाकलापों के उत्पादों से और इस सजह से अन्य व्यक्तियों से या प्रकृति से या अपने द्वारा ऐतिहासिक रूप से रचित मानवीय संभावनाओं से यानी खुद से कट जाता है ये सारी स्थितियां अलगाव के होने पर एक साथ ही मौजूद हो सकती हैं। कहा जा सकता है कि अलगाव हमेशा स्वयं से अलगाव या आत्म अलगाव (Selfalienation) भी होता है।

मार्क्स के बाद दुनिया भर के तमाम साहित्यिक-बौद्धिक हलकों में अलगाव पर काफी चर्चाएं और बहसें चली हैं और इस अवधारणा का विस्तार भी हुआ है। *एरिक फ्रॉम* जैसे फ्रायडो-मार्क्सवादियों से लेकर *जॉर्ज लूकाच* जैसे मार्क्सवादी चिन्तकों के अध्ययनों में अलगाव की अवधारणा का प्रमुख स्थान रहा है। लेकिन दुर्भाग्यवश भारत के बौद्धिक जगत में अलगाव की अवधारणा पर उतनी गहराई से चिन्तन-अध्ययन नहीं हो पाया है जितनी जरूरत थी। लेकिन फिर भी आज से दो दशक पहले भारतीय समाज में अलगाव की समझ पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में चर्चाएं होती रहती थीं। यह विडम्बना ही है कि आज जब समाज के भीतर अलगाव न केवल अधिक गहराई में पैठ बना चुका है। पर इसकी व्यापकता भी अभूतपूर्व रूप से बढ़ी है, तो इस पर चर्चाएं बहुत कम ही पढ़ने-सुनने को मिलती हैं। ऐसा लगता है कि भूमण्डलीकरण के दौर की शुरुआत के बाद मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों की जो नयी पीढ़ी आयी है क्लासिकी मार्क्सवादी विरासत से पूरी तरह परिचित नहीं है। दरअसल बुद्धिजीवियों की वह पीढ़ी ही अब हमारे बीच से अनुपस्थित होती जा रही है जिसकी पैदाइश और परवरिश उस दौर में हुई थी जब अध्ययन की संस्कृति जिन्दा थी। आज के नये बुद्धिजीवियों का परिचय और आसक्ति उत्तर आधुनिक, उत्तर औपनिवेशिक, नव मार्क्सवादी विचार सरणियों से तो है लेकिन क्लासिकी बहसों से उनका कोई विशेष परिचय नहीं जान पड़ता है और क्लासिकी कृतियों की उनकी समझ अत्यन्त 'सेकेण्ड हैण्ड' और चलताऊ किस्म की जान पड़ती है। जो बुद्धिजीवियों एक हद तक इस अवधारणा को समझते भी हैं वे भी जाने अनजाने इस परिघटना के मूल स्रोत पर पर्दा डालते रहें और इसे महज एक मध्यवर्गीय परिघटना के रूप में चित्रित करते हैं।

इसके अतिरिक्त उच्च मध्यवर्गीय जीवन बिताते ये बुद्धिजीवी स्वयं ही जनता और श्रम से भीषण अलगाव के शिकार हैं। ऐसे में ये सभी बुद्धिजीवी अलगाव की अवधारणा को भारतीय परिप्रेक्ष्य में अवस्थित कर समझने में अक्षम हैं। मार्क्स के अलगाव के सिद्धान्त से तो वे दूर हैं ही अपने वर्ग रूपान्तरण के चलते वे भारतीय जनमानस से भी वे कट गये हैं। इस कारण से भी आज अलगाव के सिद्धान्त की नये सिरे से चर्चा आवश्यक और वांछनीय है।

**अलगाव के प्रश्न पर शुरुआती चिन्तन.**

...

जैसा कि पहले जिक्र किया गया है जर्मन दार्शनिक हेगेल अलगाव की परिघटना पर चिन्तन करने वाले पहले दार्शनिकों में से एक

थे। हेगेल की अलगाव की अवधारणा उनके मस्तिष्क के संवृत्तिशास्त्र (Phenomenology of mind)में अभिव्यक्त होती है। हेगेल के अनुसार अलगाव परम विचार (देमी उर्गोस) के स्वयं से अलगाव के साथ शुरू होता हैं परम विचार (देमी उर्गोस) का स्वयं से अलगाव प्रकृति के रूप में परिणामित होता है। यानी प्रकृति परम विचार का आत्म अलगावकृत रूप है। परम विचार (Self-alienated )स्वयं के अलगाव या आत्म अलगाव से मनुष्य के रूप में वापस आता है जो विपरकीयकरण (De-alienation) की प्रक्रिया में परम या निरपेक्ष (Absotute)है। यानी हेगेल के लिए स्वयं से अलगाव और विषरकीयकरण परम विचार के अस्तित्व के दो अलग रूप हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य नैसर्गिक रूप से एक स्वयं से कटी आत्मा है और मनुष्य ऐतिहासिक रूप से एक विपरकीयकृत अस्तित्व है, जो परम विचार के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अलगाव के संदर्भ में हेगेल जो सबसे मार्के की बात कहते हैं वह यह है कि मनुष्य नैसर्गिक रूप से वस्तुओं का उत्पादन करता है (भौतिक, सामाजिक और राजनीतिक), और हर वस्तु का निर्माण अलगाव की घटना है। हर वस्तुकरण (objectification) या वस्तु का उत्पादन अलगाव को पैदा करना है, उत्पाद का उत्पादक से अलगाव। हेगेल कहते हैं कि इस अलगाव से परिस्थितियों का उचित ज्ञान प्राप्त करके ही बचा जा सकता है।

फायरबाख ने हेगेल के अलगाव के सिद्धान्त के उस हिस्से की आलोचना की जिसे **''भाववादी हिस्सा''** कहा जा सकता है। फायरबाख ने हेगेल का खण्डन करते हुए कहा कि मनुष्य स्वपरकीयकृत ईश्वर नहीं है, सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। यानी मनुष्य ने अपने एक अंश को स्वयं से अलग करके भगवान को बनाया है और उसे एक अलौकिक सत्ता प्रदान की है। मतलब यह हुआ कि ईश्वर स्वपरकीयकृत मनुष्य है, न कि इसके उल्टा। मनुष्य के मूलतत्व के निरपेक्षीकृत रूप को उससे काटकर ईश्वर की रचना हुई। मनुष्य अपने द्वारा बनाए गए ईश्वर के सामने नतमस्तक होता है, आरती उतारता है और घण्टी डोलाता है, जो दरअसल उसी का स्वपरकीयकृत और निरपेक्षीकृत रूप है। फायरबाख मानते हैं कि मनुष्य का विपरकीयकरण इस कल्पित अस्तित्व के उन्मूलन से ही सम्भव है। यहीं पर फायरबाख गलती करते हैं और अलगाव की गम्भीर और जटिल परिघटना को धर्म के चौखटे में कैद कर देते हैं।

**मार्क्स के विचार**

मार्क्स ने इस कमी को समझा और हेगेल और फायरबाख की खण्ड-खण्ड में और बिखरी हुई सही व्याख्याओं को व्यवस्थित किया और अलगाव के उद्गम को खोज निकाला। इसके साथ ही मार्क्स ने पूंजीवादी समाज में अलगाव की परिघटना का एक सम्पूर्ण और विस्तृत सिद्धान्त पेश किया।

खासतौर से '1844 की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियां' में मार्क्स ने हेगेल के अलगाव-सम्बन्धी सिद्धान्त का विश्लेषण किया। उन्होने हेगेल की इस बात के लिए प्रशंसा की कि उन्होने मनुष्य की आत्मरचना को एक प्रक्रिया के रूप में देखा और वस्तु के उत्पादन के हर उदाहरण को अलगाव की परिघटना माना।

लेकिन धर्म वाले मामले में मार्क्स ने फायरबाख को सही माना। फिर भी उन्होने बताया कि धर्म का मनुष्य के परकीयकृत रूप में पैदा होना, अलगाव की परिघटना का एक बेहद सीमित और तमाम पहलुओं में से एक पहलू है।

मार्क्स ने इस बात को समझा और अलगाव की परिघटना को धर्म की चारदीवारी से मुक्त करते हुए एक सामान्यीकृत सिद्धान्त का निर्माण किया।

मनुष्य माल, मुद्रा और पूंजी के रूप में अपने आर्थिक क्रियाकलापों के उत्पाद को स्वयं से काट कर स्वतंत्र शक्ति बनाता है। माल, मुद्रा और पूंजी के रूप में अपने आर्थिक क्रियाकलापों के उत्पाद को स्वयं से काट कर स्वतंत्र शक्ति बनाता है। माल अन्धभक्ति (Commodity fetishism) भी मूलत: अलगाव का ही एक रूप हैं इसी तरह से अपनी सामाजिक और राजनीतिक गतिवधियों के उत्पादों को वह सरकार, राज्य और कानून आदि के रूप में स्वयं से काट देता हैं इस तरह मनुष्य अपनी तमाम गतिविधियों के फल को स्वयं से अलग कर भौतिक वस्तुओं और संस्थाओं का एक शक्तिशाली संसार बनाता है और खुद ही उसका गुलाम बन जाता है।

वह न सिर्फ अपने श्रम के उत्पादों से स्वयं को काटता है, बल्कि उस श्रम या गतिविधि से ही स्वयं को काट लेता है जिससे वह उत्पादों की यह दुनिया खड़ी करता है इस तरह वह प्रकृति और अपने इर्द-गिर्द के लोगों से भी स्वयं को काट लेता है।

अलगाव के यह सभी रूप अंतिम विश्लेषण में हमें एक ही नतीजे पर ले जाते हैं-

**ये सभी मनुष्य के आत्म-अलगाव (Self-alienation) की ही अलग-अलग अभिव्यक्तियां हैं, उसके मानवीय सारतत्व और अपनी मानवीयता से ही कट जाने की अभिव्यक्तियां हैं।**

मार्क्स ने न सिर्फ अलगाव की परिघटना को विश्लेषित किया और व्याख्यायित किया बल्कि उन्होंने जोर देकर यह बतलाया कि कम्युनिज्म की प्राप्ति 'मनुष्य का पुनर्घटन है, उसका स्वयं तक लौटना है, उसके आत्म-अलगाव का निजी सम्पत्ति के निश्चयात्मक उन्मूलन द्वारा, स्थगन है और इस प्रकार मनुष्य द्वारा और उसके लिए मानव प्रकृति का वास्तविक आत्मीयकरण है।'

श्रम विभाजन की लगातार जारी प्रक्रिया (आदिम कम्युनिज़्म, दास समाज, सामंतवाद-पंजीवाद- अन्तरविरोधों और वितरण) की असमानताओं को जन्म देती है। व्यक्ति समाज को जो योगदान देता है और जिस समाज को योगदान देता है, दोनों के बीच एक पार्थक्य पैदा होता है। मनुष्य को क्या करना है, यह तय करने की स्वतंत्रता खोनी पड़ती है।

लेकिन इन सब के मूल में कौन सी चीज़ है? क्यों मनुष्य अपने श्रम से कट जाता है? इन सारे सवालों का जवाब पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया और उत्पादन संबंधों में निहित है। इस संदर्भ में मार्क्स ने अपने विचारों को एक ठोस रूप और कारणात्मक आधार 'ग्रुनरिस्से' (Grundrisse) में दिया।

उत्पादन के दौरान मजदूर अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है। यह मूल्य फिर से वस्तु में रूपान्तरित श्रम के रूप में जीवित श्रम से विनिमय की प्रक्रिया में पूंजी बनकर प्रकट होता हैं इस प्रकार वह स्वयं को दो भागों में विभक्त करता है- श्रम की वस्तुगत स्थितियां (Objective conditions of labour), यानी भौतिक स्थितियां और औज़ार तथा श्रम की आत्मगत (Subjective conditions

of labour), यानी मजदूर की जरूरतें और आजीविका। उत्पादन के पहले चक्र में मूल्य के रूप में प्रविष्ट मुद्रा दूसरे चक्र में पूंजी के अवतार में प्रवेश करती हैं ।पहले चक्र की पूर्व मान्यताएं आर्थिक गतिविधियों से नहीं पैदा होती थीं, वे पूंजी के जन्म के लिए बाहर से पैदा होने वाली मान्यताएं थीं। लेकिन दूसरे चरण में ये बाह्य मान्यताएं अब पूंजी के संचरण के अलग-अलग घटकों के रूप में दिखाई देती हैं। अब *अतिरिक्त श्रम* वास्तवीकृत रूप में *अतिरिक्त उत्पाद* का जामा पहन लेता है।* **यही अतिरिक्त उत्पाद अपनी पूर्णता में- अतिरिक्त श्रम को पूर्णता में वास्तवीकृत करके- अतिरिक्त पूंजी का रूप ग्रहण करता है,** एक स्वतंत्र विनिमय मूल्य के रूप में, जिसमें जीवित श्रम के उपयोग मूल्य की एक विशिष्टीकृत अभिव्यक्ति होती है, जिसे विशिष्ट उपयोग मूल्य (Specific use value)कहा जा सकता है।

श्रम की वस्तुगत स्थितियों और जीवित श्रम का यह अलगाव इस हद तक जाता है कि ये वस्तुगत स्थितियां परकीयकृत सम्पत्ति (alien property)के रूप में मजदूर के विरोध में खड़ी हो जाती है, मजदूर का श्रम ही परकीयकृत श्रम (alien Labour) प्रतीत होने लगता हैं श्रम और सम्पत्ति के बीच, जीवित श्रम शक्ति और इसकी वसूली की स्थितियों के बीच, वास्तवीकृत और जीवित श्रम के बीच, मूल्य और मूल्य उत्पादक गतिविधि के बीच यह निरपेक्ष अलगाव, मजदूर के वास्तवीकृत श्रम के रूप में प्रकट होता है, जिस पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता है।* यह पूंजी के रूप में प्रकट होता है और मजदूरों के लिए बेतरह असंवेदनशील और क्रूर साबित होता है। **श्रम शक्ति इस दौरान अपने लिए बस वही चीजें जुटा पाती हैं जो उसके पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होती हैं, और बदले में ऐसी चीजें और मूल्य रचती है जो उसके लिए परायी (alien) होती हैं और उस पर शासन करती हैं।** इस तरह इस जीवित श्रम शक्ति ने न केवल परकीवकृत समृद्धि (Alien wealth) और अपनी दरिद्रता पैदा कर दी है। बलिक वे संबंध भी पैदा कर दिये हैं जिसके जरिये यह समृद्धि उससे स्वतंत्र होती जाती है, उसी श्रम के बूते पर और उसकी बढ़ती दरिद्रता के अनुपात में। यह सब कुछ वास्तवीकृत श्रम (या मालों) से मजदूर की श्रमशक्ति के विनिमय से शुरू होता है, जो दरअसल मजदूर द्वारा स्ववस्तुकरण (Self objectification) की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है। यह एक ऐसी शक्ति के रूप में उसका वास्तवीकरण होता है, जो उससे न सिर्फ स्वतंत्र होती है, बल्कि उस पर उसी के श्रम द्वारा शासन करती है।

इस तरह से मजदूर अपने श्रम, श्रम प्रक्रिया और उसके उत्पाद से कट जाता हैं। लेकिन पूंजीवादी अलगाव की कहानी यहीं खत्म नहीं होती। **पूंजीवाद मजदूरों को उत्पादन के निर्णयों से भी काट देता है।** सारे निर्णय वही स्वतंत्र सत्ता लेती है जिसे मजदूर पैदा करता है और पूंजीपति के रूप में जिसका **व्यक्तित्व आरोपण (personification) होता है।** उत्पादन शुरू होने से लेकर उत्पाद के बिक जाने तक मजदूर सिर्फ सभी निर्णय लेने वाली सत्ता को अपने अतिरिक्त श्रम या परकीयकृत श्रम से मजबूत करता रहता हैं क्या पैदा करना है, कितना पैदा करना है, किसके लिए पैदा करना है, कैसा कच्चा माल इस्तेमाल करना है, क्या तकनीक इस्तेमाल करनी है, यह सब तय करने में मजदूर की कोई भूमिका नहीं होती है।

मजदूर सैद्धान्तिक स्तर पर इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि वे अतिरिक्त श्रम मुहैया कर अपने ऊपर शासन करने वाली सत्ता को लगातार मजबूत बना रहे हैं। लेकिन वे सामान्य बुद्धि और अनुभव के स्तर पर इतना समझ जाते हैं कि पूंजीपति श्रम सघनता बढ़ाकर अपना मुनाफा बढ़ाना चाहते हैं और इससे मजदूरों को कोई लाभ नहीं होगा। ऐसे में मजदूरों की भौतिक सम्पदा के उत्पादन में कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती है।

यह बात क्लर्क, बाबू, सभी पर लागू होती है। कोई भी श्रम करने वाला तबका पूंजीवादी समाज में अपने श्रम से संबंधित निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं हाता है, न ही अपने श्रम के उत्पाद पर उसका नियंत्रण होता है **लेकिन मध्यम वर्ग में अलगाव का कारण अपने श्रम की उपज और निर्णय लेने के अधिकार से कट जाने के अलावा श्रम से ही कट जाना भी होता है।** यह तबका उत्पादन की गतिविधियों से सीधे तौर पर नहीं जुड़ा होता है। न ही उसके कार्य की प्रकृति सामाजिक होती है। उसका पेशा ही अक्सर परकीयकृत पेशा होता है। मिसाल के तौर पर एक नौकरशाह जो पूंजीवाद में वस्तुओं से लेकर आदमियों तक को उस पूंजी के लिए "व्यवस्थित" करता है जो खुद उससे कटी होती है। वह उन लोगों से भी कटा होता है जिन्हें उसे प्रशासित करना होता है। वे लोग भी दरअसल उसके लिए वस्तुओं और संख्याओं से अधिक कुछ नहीं हैं । मार्क्स ने कहीं पर ठीक ही लिखा है: **"नौकरशाह अपने आप को दुनिया से अपनी गतिविधि के एक मामूली प्रयोजन के रूप में संबद्ध देखता है।"** अर्जन और उपभोग की प्रक्रिया में **मुद्रा भी एक अलगावकारी शक्ति की भूमिका अदा करती है।** मार्क्स ने मुद्रा की भूमिका का बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है:

**"मुद्रा ... मनुष्य तथा प्रकृति की वास्तविक सारभूत शक्तियों को मात्र अमूर्त धारणाओं... में बदल देती है। इस प्रकार मात्र इस अभिलाक्षणिकता के अनुसार मुद्रा विशिष्टताओं की सार्विक विकृति है, जो उन्हें उनके प्रतिलोम में बदल डालती है तथा उन्हें ऐसे गुणों से सम्पन्न करती है जो उनके लिए विरोधाभासपूर्ण हैं।**

**इस विकृतकारी शक्ति के रूप में मुद्रा फिर व्यक्ति के विरुद्ध तथा समाज के बन्धनों आदि के विरुद्ध, जो आत्मनिर्भर स्वत्व होने का दावा करते हैं, प्रकट होती है। वह निष्ठा को अनिष्ठा, प्यार को घृणा, घृणा को प्यार, अच्छाई को बुराई, बुराई को अच्छाई, दास को स्वामी,स्वामी को दास, मूर्खता को बुद्धि, बुद्धि को मूर्खता में बदल देती हैं।"** *(1844 की आर्थिक और दार्शनिक पाण्डुलिपियां)*

मध्यम वर्ग में मुद्रा की इस कपटपूर्ण जादूगरी को खूब देखा जा सकता है।

मध्यमवर्ग में अलगाव की एक और अभिव्यक्ति को **एरिक फ्रॉम** रेखांकित करते हैं। वह कहते हैं कि हम चीजों को अर्जित करते हैं बस उन्हें पाने के लिए। अक्सर उसके उपयोग के लिए नहीं, बस उसे पाने के लिए लोग महंगी, नाजुक चीज़ें खरीदते हैं लेकिन टूट जाने के डर से उनका इस्तेमाल नहीं करते। तमाम किस्म की चीज़ें उनके पास इस्तेमाल किये जाने की खातिर नहीं, वो बस उनके अधिकार में हैं, और इससे उन्हें सन्तुष्टि मिलती है। कारण यह है कि ये वस्तुएं समाज में उन्हें एक ओहदा या दर्जा प्रदान करती हैं।



*मसलन उत्पादन के पहले चरण में लगाया जाने वाला श्रम जो एक बाह्य कारक होता है दूसरे चरण में उत्पादित माल का रूप ले लेता है, यानी वह उत्पादन में होने वाले पूंजी के संचरण के एक घटक का रूप ग्रहण कर लेता है।

*यानी की मजदूर का श्रममाल के रूप में वास्तवीकृत होता है, जिसपर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता। उस पर उसकी श्रमशक्ति खरीदने वाले पूंजीपति का नियंत्रण होता है।

वैसे ही हम पेप्सी या कोका कोला पीते हुए या कैडबरी की चॉकलेट खाते हुए वह मिथ्याभ्रम खा या पी रहे होते हैं जो प्रचार अभियान पैदा करते हैं। संक्षेप में: **उपभोग की क्रिया एक ठोस मानवीय गतिविधि नहीं रह जाती जिसमें हम एक महसूस कर सकने वाले निर्णय लेने के काबिल इंसानों के तौर पर हिस्सा लेते हों। आज मध्यम वर्ग में उपभोग कृत्रिम रूप से पैदा किए गए मिथ्याभासों की पुष्टि है, जो हमारे व्यक्तित्व से परकीयकृत है और उसे शासित कर रहे हैं।**

इसके अतिरिक्त मध्यम वर्ग ऐसे मालों के अम्बार से घिरा हुआ है जिसकी प्रकृति और उत्पादन के बारे में वह या तो पूर्णतया अनभिज्ञ है या उतना ही जानता है जितना उसने अपने स्कूल की पाठ्य पुस्तक में पढ़ा था। वह इतना तो जानता है कि किसी मशीन में कौन- सा बटन दबाएं तो क्या होगा लेकिन वह यह नहीं जानता कि वह मशीन किस सिद्धान्त पर काम करती है। वह ब्रेड खाता है, कोल्ड ड्रिंक पीता है, कपड़े पहनता है, लेकिन इन चीजों के उत्पादन से उसका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है। लेकिन उपभोग की उसकी आवश्यकता लगातार बढ़ती ही जा रही है। उपभोग का बढ़ना अपने आप में कोई गलत बात नहीं है। जब भी मनुष्य उत्पादन, संस्कृति आदि के उन्नत धरातल पर पहुंचता है तो खाने-पीने की, बेहतर कपड़े व अन्य वस्तुओं की उसकी जरूरतें बढ़ती हैं। लेकिन इस हालत में यह विस्तार मनुष्य के लिए एक लक्ष्य की प्राप्ति का जरिया हैं लेकिन आज स्थिति बिल्कुल अलग है, **उपभोग अपने आप में ही लक्ष्य बन गया है** मार्क्स ने इसको कुछ यूं अभिव्यक्त किया: **"मालों के बाहुल्य के साथ परकीयकृत वस्तुओं का राज्य बढ़ता जाता है, जो मनुष्य को गुलाम बनाता है।"**

मनुष्य सिर्फ अपने श्रम, उसके उत्पादन अपने उपभोग की वस्तुओं से ही नहीं बल्कि उन सामाजिक शक्तियों से भी कट जाता है जो पूरे समाज के स्वरूप का निर्धारण करती हैं।

पूंजीवादी समाज में जी रहे मनुष्य की यह असहायता तब और भी मुखर हो जाती है जब मंदी या युद्ध जैसी कोई सामाजिक-आर्थिक आपदा आती है, जिनकी राजसत्ता हर बार अफसोसनाक दुर्घटना के रूप में भर्त्सना करती है लेकिन उन्हें घटने से कभी रोक नहीं पाती। ये दुर्घटनाएं ऐसे पेश की जाती हैं, गोया वे कोई प्राकृतिक आपदा हों। सामाजिक शक्तियों के बारे में यह अनभिज्ञता भी पूंजीवादी समाज में अलगाव की ही एक अभिव्यक्ति है।

लेकिन यह स्पष्ट कर देना यहां बेहद जरूरी है कि मध्यम वर्ग में प्रतिबिम्बित अलगाव के सभी रूप दरअसल पैदा तो अपने श्रम, उसकी उपज और निर्णय लेने के अधिकार से कट जाने से ही होते हैं।

मार्क्स की इन प्रस्थापनाओं की रोशनी में अगर हम अलगाव की परिघटना को आज के भारत में अवस्थित करें तो भारतीय जनमानस को समझने में काफी मदद मिलेगी और साथ ही इसे दूर करने (यानी समाजवाद की प्राप्ति और फिर कम्युनिज़्म की ओर प्रयाण) की कई समस्याओं पर रोशनी पड़ेगी। यह एक ऐसी चीज है जो लम्बे समय से भारतीय क्रांतिकारी साहित्य में एक जरूरत बनी हुई है। ●

**"... श्रम- विभाजन हमारे सामने इस बात की पहली मिसाल पेश करता है कि जब मनुष्य स्वतः स्फूर्त समाज में रहता है, अर्थात जब तक विशेष तथा सामान्य हित के बीच दरार मौजूद रहती है और इसलिए जब तक क्रियाकलाप स्वैच्छिक रूप से नहीं बल्कि नैसर्गिक रूप से विभक्त रहता है, मनुष्य का अपना कार्य उसके ही विरुद्ध ऐसी विजातीय शक्ति बन जाता है, जो उसके नियंत्रण में होने की जगह उसे दास बनाती है।"**

**- कार्ल मार्क्स**

**(जर्मन विचारधारा)**


## 'आह्वान' यहां से प्राप्त करें

**उत्तर प्रदेश** ■ जनचेतना, जाफरा बाज़ार, **गोरखपुर** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, **गोरखपुर** ■ जनचेतना, डी-68, निरालानगर, **लखनऊ**-226020 ■ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ■ विमल कुमार, बुक स्टाल, नीलगिरी काम्प्लेक्स के सामने, इंदिरानगर, **लखनऊ** ■ कृष्णगोविन्द सिंह, एस.एच. 1/49, ए-24 (प्रथम तल), जयनगर कालोनी, गिलट बाज़ार, **वाराणसी** ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी**, ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूध नाथ, जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, **मऊ** ■ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद** ■ डी.के.सचान, एस.एच.-272, शास्त्रीनगर, **गाज़ियाबाद**, ■ अरुण कुमार चौबे, सर्वोदय बुक स्टाल प्लेटफार्म नं.-5 रेलवे स्टेशन **वाराणसी**, **कैण्ट** वाराणसी, ■ कृष्ण कुमार श्रीवास्तव, पुत्र श्रीशिवाशंकर श्रीवास्तव ग्राम व पोस्ट मधुकरपुर, जिला **रायबरेली**, ■ राहुल पुस्तक सेन्टर, निकट विजय श्री, खरौली कोठी स्टेशन रोड, **बलिया**, ■ गार्गी विक्रय पटल, 127 न्यू आवास विकास कालोनी, **सहारनपुर**,

**उत्तरांचल** ■ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास-विकास, **रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)** ■ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, **पन्तनगर (ऊधमसिंहनगर)** ■ अविनाश श्रीवास्तव, 87, पन्त भवन, **पन्त नगर विश्वविद्यालय, (ऊधमसिंहनगर)** ■ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)** ■ प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, **पन्तनगर** ■

**दिल्ली** ■ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज-1, **दिल्ली** ■ अभिनव सिन्हा, रूम नं.-17, रामजस हास्टल **दिल्ली विश्वविद्यालय**, ■ **जनचेतना, चलता फिरता पुस्तक केन्द्र, चौड़ा मोड़, नोएडा (सायं 5 से 8 बजे तक)** ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस** ■ पत्रिका मंडप, कला संकाय, **दिल्ली विश्वविद्यालय** ■ नई किरण पुस्तक भण्डार, 56, हरकेश नगर, **ओखला, दिल्ली**

**हरियाणा** ■ नरभिंदर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, **हरियाणा**, ग्रा./पो.-संतनगर, जिला-**सिरसा**, पंकज, प्लाट नं.-33, सेक्टर 15, सोनीपत

**पंजाब** ■ राणा बुक स्टोर, निकट पी.यू.डी.ए. आफिस भागू रोड **भटिण्डा**,

**बिहार** ■ समकालीन प्रकाशन (प्रा.लि.), पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, ■ रामनरायण राय, द्वारा राघव पटेल, कपड़े की दुकान साहेबगंज पोस्ट करनौल, जिला **मुजफ्फरपुर**, ■ **बंगाल** ■ जर्नादन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ सी. पी. सरौज, सनराइज स्कूल, छोटा अदलपुर, सेमलबाड़ी, **दार्जलिंग** ■ राकेश गोरखा, पाथिभरा पुस्तक पसल, प्रधान नगर, **सिलीगुड़ी**, ■ मनोज गिरि, द्वारा लोकनाथ निराला, निकटआचार्य क्लब, नया बाजार **कर्सियांग-दार्जिलिंग**। **मध्य प्रदेश** ■ विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22 स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसेल चौक, जबलपुर, ■ जैनसन बुक शॉप एण्ड स्टेशनर्स, 33 वक्षी गली, वीरसावरकर मार्केट **राजवाड़ा इन्दौर**। **महाराष्ट्र** ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15 कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**, ■ बसुन्धरा, 602, गेटवे प्लाजा, हीरानन्दानी गार्डेन, पवई, **मुम्बई**। **राजस्थान** ■ कविता, द्वारा योगेश कुमार, 94, मोहननगर (त्रिवेणीनगर), गोपालपुरा बाईपास, ■ सुभाषचन्द्र, 221 सुन्दरवास, गंगा फ्लोर मिल के पास, **उदयपुर**, **जयपुर** ■ बुक्स एण्ड न्यूज मार्ट, एम.आई.रोड, **जयपुर**। **असम** ■ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया**। **नेपाल** ■ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, बुटवल, **रुपनदेई**

# सूर्योदय होगा निश्चित, और जल्द ही

*इतिहास बताता है कि हर जिन्दा कौम के बहादुर बेटे-बेटियों ने अपनी आजादी और सामाजिक न्याय के एक आदर्श के लिए निरंतर संघर्ष किया है और अकूत कुर्बानियां दी हैं। अतीत में ऐसे कई महान संघर्ष हुए हैं जिनसे पैदा हुई ऊष्मा ने देशों की सीमा लांघते हुए दुनिया के हर कोने के युवा हृदयों को उद्वेलित किया। 1917 की रूसी क्रान्ति को ही लें जिसने सिर्फ रूस ही नहीं, बल्कि पूरी मानवता को नये युग में प्रविष्ट करा दिया। स्वयं हमारे देश की आजादी के आन्दोलन पर इसका गहरा असर पड़ा और नये संवेग के साथ मजदूरों-किसानों के साथ छात्रों युवाओं ने अपने को संघर्षों में झोंक दिया। यहां पर हम उसी रूसी क्रान्ति की एक सिपाही का एक पत्र दे रहे हैं, उसके एक संक्षिप्त परिचय के साथ।*

**- सम्पादक**

सूर्योदय होगा निश्चित, और जल्द ही
खिल उठेंगी कलियां
सूर्य का आलोक फैलेगा धरा पर
सदियों के आखिरी निशानात भी
मिटा दिये जायेंगे
जैसे बुहार दिया गया हो,
स्वयं जिन्दगी द्वारा।

**मेरी सबसे प्यारी अनैद☆,**

मैं अमूमन अवसाद के क्षणों में तुम्हें पत्र लिखने बैठ जाती हूं, और इस वक्त भी यही सच है। हालांकि मेरे पास इसके निराकरण का उत्तम साधन है, एक उपचार है जो मुझे शान्त करता है, और वह है मेरा काम। मैं ढेर सारा काम कर रही हूं। मेरा मतलब है प्रचार के क्षेत्र में। कच्चे माल को गढ़ने का मेरा हुनर जब एक सचेत मजदूर को तैयार करने में रंग ले आता है, जब मैं उसकी वर्ग-चेतना को जगा देती हूं... तब मैं सन्तुष्ट महसूस करती हूं, तब मेरी ताकत दो गुनी हो जाती है, तब मैं सप्राण होती हूं। मैं अवसाद महसूस नहीं करती, और अधिक आत्मदृढ़ता से काम में जुट जाती हूं। यह ज्ञान मुझे मदद करता है ढेर सारा अध्ययन करने में, व्यवस्थित ढंग से जीने में (नहीं तो कोई काम ही नहीं हो सकता), अपने साथी विद्यार्थियों की बेफिक्र महफिल का सुख छोड़कर अध्ययन करने में, और अध्ययन करने में। कितनी खुश हूं मैं कि मेरा काम तब भी उपयोगी था जब हम अभी भूमिगत ही थे और आज तो मैं कुछ हद तक अनुभवी हो चुकी हूं, और यह भी कि मैं काम कर सकती हूं! इन दिनों उन सभी के विरुद्ध जो हम बोल्शेविकों के साथ नहीं हैं, एक भीषण संघर्ष मौजूद है... अब मैं तुरत-फुरत एक सूची तैयार कर, दो कारखानों के पुस्तकालयों के लिए किताबें खरीदने जा रही हूं। फिर मैं घर चली जाऊंगी और वहां जाकर सामाजिक-जनवादी (रूस के तत्कालीन क्रान्तिकारी -अनु.) महिलाओं के एक ग्रुप का 'क्लास' आयोजित करूंगी... अनैद, तुम सोच भी नहीं सकती कि कैसी ऊर्जा और कैसी प्रतिभा मजदूरों के बीच मौजूद है। तुम शायद सोचती होगी कि मैं भी उन्हीं लड़कियों की तरह हूं जो 'ऊंची सोसायटी' की औरतों की 'विद्वत मण्डली' में शामिल होती हैं, कि मैं भी आजादी और "बेचारे मजदूरों" की बात करते हुए आंखों में आंसू भर लाती हूं और यह कि मेरा उनके प्रति एक भावुकतावादी झुकाव है। नहीं, इससे एकदम अलग बात है। मैं उन मजदूरों को इस काम से पहले ही जान गई थी और अब तो अच्छी तरह जानने लगी हूं। उन मजदूरों के पास एक वर्ग की महत्ता है, भविष्य जिसका है, जो अभी आगे कदम बढ़ा ही रहा है और जिसकी शक्ति अभी जाग ही रही है।

... मेरे बारे में चिन्ता मत करना। मैं खुश हूं और भली-चंगी हूं। मेरा ख्याल है कि मैं थोड़ा बदल गयी हूं। कोई बात नहीं, मुझे अभी अपने आपको और ज्यादा बदलना ही होगा। मुझे अभी एकदम घर छोड़ देना है, और यहां बाहर तो बिल्कुल जमा देने वाली ठंड है। खिड़की के शीशे पर ओलों की तड़तड़ाहट हो रही है। एक शोकाकुल, उन्मत्त किन्तु जीवन्त गीत की तरह यह आवाज है। धूसर आकाश आफत का मारा और एकाकी है। लेकिन सूर्योदय जल्द ही होगा, कलियां खिल उठेंगी, सदियों के आखिरी निशानात भी मिटा दिये जायेंगे, जैसे बुहार दिया गाय हो, स्वयं जिन्दगी द्वारा।

**ढेर सारा प्यार,**
**ल्यूसिक**

पुनश्च: अनैद, कभी मत भूलना कि मैं भरपूर जीवन जी रही हूं।

**☆ल्यूसिक की बहन**

**ल्यूसिक लिसिनोवा** एक रूसी विद्यार्थी थी। लेकिन वह किताबी कीड़े की तरह नहीं, बल्कि एक सार्थक और भरपूर जीवन जीना चाहती थी। वह सोचती थी कि इंसानियत की बेशकीमती उपलब्धियों, ज्ञान-विज्ञान की खोजों को मेहनतकश जनता के जीवन को बेहतर बनाने में काम आना चाहिए। वह सोचती थी कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण खत्म हो। वह आजादी और न्याय की बात सोचती थी। उसने जाना कि उसके देश के बहादुर युवा भी उसकी तरह सोचते हैं और उसने हमसफरों को तलाशा और अपने को एक महान और ऊंचे लक्ष्य के प्रति समर्पित कर दिया।

19 वर्षीया ल्यूसिक को बोल्शेविक पार्टी ने मजदूरों के बीच पार्टी कार्य करने मास्को भेज दिया। यह क्रान्ति वर्ष 1917 था। ल्यूसिक ने 'श्रमजीवी युवाओं के संघ' के एक संगठनकर्ता के तौर पर काम किया। क्रान्ति से पूर्व के तूफानी महीनों में दुबली-पतली ल्यूसिक ने जिस साहस के साथ पार्टी कार्यों को अंजाम दिया, सह अद्भुत था। अक्टूबर माह के निर्णायक संघर्ष में वह तूफानी पितरेल पक्षी की तरह कूद पड़ी। उसने बैरिकेडिंग में हाथ बंटाया, घायलों की देखभाल की और आगे बढ़कर लाल सेना की टुकड़ियों के बीच संदेशों का आदान-प्रदान किया। गोलियों की बौछारों के बीच वह मौत को धता बताती हुई हेडक्वार्टर के आदेशों को लाल सेना की टुकड़ियों तक पहुंचाती रही। लेकिन एक दिन वह दुश्मन के सफेद गार्डों की मशीनगन के निशाने पर आ ही गयी। जिस दिन वह मारी गयी, उसके ठीक अगले दिन बोल्शेविकों ने मास्को पर कब्जा कर लिया और निरंकुश जारशाही के खात्मे की घोषणा की। क्रान्ति की इस सिपाही ल्यूसिक लिसिनोवा को लाल चौक की क्रेमलिन वाल में दफनाया गया। ●

नाज़िम हिकमत की दो कविताएं

## लालसा

मैं समन्दर की तरफ़ वापस लौटने की लालसा से भरा हुआ हूं।
भरा हुआ हूं पानी के नीले आईने में झलकने और बढ़ने की लालसा से
मैं समन्दर की तरफ़ वापस लौटने की लालसा से भरा हुआ हूं
जहाज़ रवाना होते हैं खुशरौशन उफ़क की जानिब
और वह उदासी नहीं हैं जो उसके सफ़ेद पासों को तानती और फैलाती है,
और बेशक़, बस एक दिन को ही
खुद को जहाज़ पर सवार देखते रहने को
मेरी पूरी ज़िन्दगी काफ़ी होगी;
और मौत चूंकि खुदा का फरमान है
मैं, पानी में दफ़्न एक लौ के मानिंद
लालायित हूं बुझ जाने को पानी में ही।
मैं समन्दर की तरफ़ वापस लौटने की लालसा से भरा हुआ हूं
भरा हुआ हूं समन्दर की तरफ़ वापस लौटने की लालसा से।

## उम्मीद

हम ख़ूबसूरत दिन देखेंगे, बच्चों,
हम देखेंगे धूप के उजले दिन...
हम दौड़ायेंगे, बच्चों, अपनी तेज़ रफ़्तार नावें खुले समन्दर में
हम दौड़ायेंगे, उन्हें चमकीले-नीले-खुले समन्दर में...
ज़रा सोचो तो, पूरी रफ़्तार से जाती
पहलू बदलती हुई मोटर
घरघराती हुई मोटर!

अरे बच्चो, कौन बता सकता है भला
सौ मील की रफ़्तार से दौड़ते वक्त लिये गये
बोसे के बेमिसाल अहसास को...

सच है कि आज हमें
शुक्रवार और इतवार को
बाग़-बगीचों में जाने का मौक़ा हाथ आता है
सिर्फ़ शुक्रवार को
सिर्फ़ इतवार को...

सच है कि आज
हम रोशनी से नहाई सड़कों पर
शो रूमों को ऐसे ताका करते हैं
जैसे कोई परीकथा सुन रहे हों,
शीशे की दीवारों वाले
सतहत्तर मंज़िल ऊंचे वे शोरूम!

सच है है कि जब हम जवाब मांगते हैं
तो काली-मनहूस क़िताब खुल जाती है हमारे लिए:
जेलख़ाना।
चमड़े की पेटियां अपनी गिरफ़्त में ले लेती हैं
हमारी बाहें
टूटी हुई हड्डियां
खून

सच है कि आज हमारे खाने की मेज़ पर
गोश्त हफ़्ते में एक बार होता है सिर्फ़
और हमारे बच्चे
काम से फारिग होकर
खाल-मढ़े हड्डियों के ढांचे जैसे
वापस लौटते हैं घर...

सच यही है फ़िलहाल
लेकिन यक़ीन लाओ मुझपर
हम खूबसूरत दिन देखेंगे बच्चों,
हम देखेंगे धूप के उजले दिन
हम दौड़ायेंगे अपनी तेज़रफ़्तार नावें खुले समन्दर में
हम दौड़ायेंगे उन्हें चमकीले-नीले-खुले समन्दर में

**(अनुवादः सुरेश सलिल)**

---

नाज़िम हिकमतः जन्मः जनवरी 1902, सेलोनिका, तुर्की में। मृत्युः जून 1963, मास्को में। तुर्की के क्रान्तिकारी वामपंथी कवि। बीसवीं शताब्दी के विश्व के महानतम कवियों में गणना। मात्र उन्नीस वर्ष की उम्र में ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध जनवादी क्रान्ति में शामिल हुए। फिर सोवियत रूस में अध्ययन के दौरान समाजवाद से प्रभावित हुए और मार्क्सवादी बने। 1925 में तुर्की लौटते ही जेल-यात्राओं का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह थोड़े-थोड़े अन्तरालों के साथ 1951 तक चलता रहा। इस दौरान नाज़िम की कविताएं प्रतिबंधों के बावजूद आम जनता में इतनी लोकप्रिय हुई कि लोग-बाग हाथ से लिखकर और सुनाकर उन्हें ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति तक नाज़िम विश्वविख्यात हो चुके थे। दुनिया भर की मुक्तिकामी जनता और बुद्धिजीवियों के आन्दोलन के दबाव में 1951 में नाज़िम हिकमत जेल से मुक्त तो हुए, लेकिन इसके बाद मृत्युपर्यन्त उन्हें निर्वासित जीवन बिताना पड़ा।

नाज़िम एक सच्चे क्रान्तिकारी कवि थे। वे जनता के बुद्धिजीवी थे। वे 'जीवन-संघर्ष-सृजन' के मूर्त रूप थे। जन्म शताब्दी वर्ष पर, हम इस महान जनकवि का क्रान्तिकारी अभिनन्दन करते है।

**-सम्पादक**

# डिप्टी कलक्टरी

**अमरकान्त**

शकलदीप बाबू कहीं एक घंटे बाद वापस लौटे। घर में प्रवेश करने के पूर्व उन्होंने ओसारे के कमरे में झांका, कोई भी मुवक्किल नहीं था और मुहर्रिर साहब भी गायब थे। वह भीतर चले गए और अपने कमरे के सामने ओसारे में खड़े होकर बंदर की भांति आंखें मलका-मलकाकर उन्होंने रसोईघर की ओर देखा। उनकी पत्नी जमुना, चौके के पास पीढ़े पर बैठी होंठ-पर-होंठ दबाकर मुंह फुलाए तरकारी काट रही थी। वह मंद-मंद मुस्कराते हुए अपनी पत्नी के पास चले गए। उनके मुख पर असाधारण संतोष, विश्वास एवं उत्साह का भाव अंकित था। एक घंटे पूर्व ऐसी बात नहीं थी।

बात इस प्रकार आरंभ हुई। शकलदीप बाबू सबेरे दातौन-कुल्ला करने के बाद अपने कमरे में बैठे ही थे कि जमुना ने एक तश्तरी में दो जलेबियां नाश्ते के लिए सामने रख दीं। वह बिना कुछ बोले जलपान कने लगे।

जमुना पहले तो एक-आध मिनट चुप रही। फिर पति के मुख की ओर उड़ती नजर से देखने के बाद उसने बात छेड़ी, "दो तीन दिन से बबुआ बहुत उदास रहते हैं।"

"क्या?" सिर उठाकर शकलदीप बाबू ने पूछा और उनकी भौंहे तन गई। जमुना ने व्यर्थ में मुस्कराते हुए कहा, "कल बोले, इस साल डिप्टी कलक्टरी की बहुत सी जगहें हैं, पर बाबूजी से कहते डर लगता है। कह रहे थे, दो-चार दिन में फीस भेजने की तारीख बीत जाएगी।"

शकलदीप बाबू का बड़ा लड़का नारायण, घर में बबुआ के नाम से ही पुकारा जाता था। उम्र उसकी लगभग 24 वर्ष की थी। पिछले तीन-चार साल से बहुत-सी परीक्षाओं में बैठने, एम.एल.ए. लोगों के दरवाजों के चक्कर लगाने तथा और भी उल्टे-सीधे फन इस्तेमाल करने के बावजूद उसको अब तक कोई नौकरी नहीं मिल सकी थी। दो बार डिप्टी-कलक्टरी के इम्तहान में भी वह बैठ चुका था, पर दुर्भाग्य! अब एक अवसर उसे और मिलना था, जिसको वह छोड़ना न चाहता था, और उसे विश्वास था कि चूंकि जगहें काफी हैं और वह अबकी जी-जान से परिश्रम करेगा, इसलिए बहुत संभव है कि वह ले लिया जाए।

शकलदीप बाबू मुख्तार थे। लेकिन इधर डेढ़-दो साल से मुख्तारी की गाड़ी उनके चलाए न चलती थी। बुढ़ौती के कारण अब उनकी आवाज में न वह तड़प रह गई थी, न शरीर में वह ताकत और न चाल में वह अकड़, इसलिए मुवक्किल उनके यहां कम ही पहुंचते। कुछ तो आकर भी भड़क जाते। इस हालत में वह राम का नाम लेकर कचहरी जाते, अक्सर कुछ पा जाते, जिससे दोनों जून चौका-चूल्हा चल जाता।

जमुना की बात सुनकर वह एकदम बिगड़ गए। क्रोध से उनका मुंह विकृत हो गया और वह सिर को झटकते हुए, कटाह कुकुर की तरह बोले, "तो मैं क्या करूं? मैं तो हैरान-परेशान हो गया हूं। तुम लोग मेरी जान लेने पर तुले हुए हो। साफ-साफ सुन लो, मैं तीन बार कहता हूं, मुझसे नहीं होगा, मुझसे नहीं होगा, मुझसे नहीं होगा।"

जमुना कुछ न बोली, क्योंकि वह जानती थी कि पति का क्रोध करना स्वाभाविक है।

शकलदीप बाबू एक-दो क्षण चुप रहे, फिर दाएं हाथ को ऊपर-नीचे नचाते हुए बोले, "फिर इसकी गारंटी ही क्या है कि इस दफे बाबू साहब ले ही लिए जाएंगे? मामूली ए.जी.ऑफिस की क्लर्की में तो पूछे नहीं गए, डिप्टी-कलक्टरी में कौन पूछेगा? आप में क्या खूबी है, साहब, कि आप डिप्टी-कलक्टर हो ही जाएंगे? थर्ड क्लास बी.ए.आप हैं, चौबीसों घंटे मटरगश्ती आप करते हैं, दिन-रात सिगरेट आप फूंकते हैं। आप में कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं? बड़े-बड़े बह गए, गदहा पूछे कितना पानी! फिर करम-करम की बात होती है। भाई, समझ लो, तुम्हारे करम में नौकरी लिखी ही नहीं। अरे हां, अगर सभी कुकुर काशी ही सेवेंगे तो हंडिया कौन चाटेगा?" डिप्टी-कलक्टरी, डिप्टी-कलक्टरी! सच पूछो, तो डिप्टी-कलक्टरी नाम से मुझे घृणा हो गई है!" और होंठ बिचक गए।

जमुना ने अब मृदु स्वर में उनके कथन का प्रतिवाद किया, "ऐसी कुभाषा मुंह से नहीं निकालनी चाहिए। हमारे लड़के में दोष ही कौन-सा है? लाखों में एक है। सब्र की सौ धार, मेरा तो दिल कहता है इस बार बबुआ जरूर ले लिए जाएंगे। फिर पहली भूख-प्यास का लड़का है, मां-बाप का सुख तो उसने जाना नहीं। इतना भी नहीं होगा, तो उसका दिल टूट जाएगा। यों ही न मालूम क्यों, हमेशा उदास रहता है, ठीक से खाता-पीता नहीं, ठीक से बोलता नहीं, पहले की तरह गाता-गुनगुनाता नहीं। न मालूम मेरे लाड़ले को क्या हो गया है!" अंत में उसका गला भर आया और वह दूसरी ओर मुंह करके आंखों में आए आंसुओं को रोकने का प्रयास करने लगी।

जमुना को रोते हुए देखकर शकलदीप बाबू आपे से बाहर हो गए। क्रोध तथा व्यंग से मुंह चिढ़ाते हुए बोले, "लड़का है तो लेकर चाटो! सारी खुराफात की जड़ तुम ही हो, और कोई नहीं! तुम मुझे जिंदा रहने देना नहीं चाहतीं, जिस दिन मेरी जान निकलेगी, तुम्हारी छाती ठंडी होगी!" वह हाँफने लगे।

उन्होंने जमुना पर निर्दयतापूर्वक ऐसा जबरदस्त आरोप किया था, जिसे वह सह न सकी। रोती हुई बोली, "अच्छी बात है, अगर मैं सारी खुराफात की जड़ हूं, तो मैं कमीनी की बच्ची, जो आज से कोई बात..." रुलाई के मारे वह आगे न बोल सकी और तेजी से कमरे से बाहर निकल गई।

शकलदीप बाबू कुछ नहीं बोले, बल्कि वहीं बैठे रहे। मुंह उनका तना हुआ था और गर्दन टेढ़ी हो गई थी। एक-आध मिनट तक उसी तरह बैठे रहने के पश्चात वह जमीन पर पड़े अखबार के एक फटे-पुराने टुकड़े को उठाकर इस तल्लीनता से पढ़ने लगे, जैसे कुछ भी न हुआ हो।

लगभग पंद्रह-बीस मिनट तक वह उसी तरह पढ़ते रहे। फिर अचानक उठ खड़े हुए। उन्होंने लुंगी की तरह लिपटी धोती को खोलकर ठीक से पहन लिया और ऊपर से अपना पारसी कोट डाल लिया, जो कुछ मैला हो गया था और जिसमें दो चिप्पियां लगी थीं, और पुराना पंप शू पहन, हाथ में छड़ी ले, एक-दो बार खांसकर बाहर निकल गए।

पति की बात से जमुना के हृदय को गहरा आघात पहुंचा था। शकलदीप बाबू को बाहर जाते हुए उसने देखा, पर वह कुछ नहीं बोली। वह मुंह फुलाए चुपचाप घर के अटरम-सटरम काम करती ही। और एक घंटे बाद भी जब शकलदीप बाबू बाहर से लौट उसके पास आकर खड़े हुए, तब भी वह कुछ न बोली, चुपचाप तरकारी काटती रही।

शकलदीप बाबू ने खांसकर कहा, "सुनती हो, यह डेढ़ सौ रुपए रख लो। करीब सौ रुपए बबुआ की फीस में लगेंगे और पचास रुपए अलग रख देना, कोई और काम आ पड़े।"

जमुना ने हाथ बढ़ाकर रुपए तो अवश्य ले लिए, पर अब भी कुछ नहीं बोली।

लेकिन शकलदीप बाबू अत्यधिक प्रसन्न थे और उन्होंने उत्साहपूर्ण आवाज में कहा, "सौ रुपए बबुआ को दे देना, आज ही फीस भेज दें। होंगे, जरूर होंगे, बबुआ डिप्टी-कलक्टर अवश्य होंगे। कोई कारण ही नहीं कि वह न लिए जाएं। लड़के के जेहन में कोई खराबी थोड़े है। राम-राम!. ..नहीं चिंता की कोई बात नहीं। नारायण जी इस बार भगवान की कृपा से डिप्टी-कलक्टर अवश्य होंगे। जमुना अब भी चुप रही और रुपयों को ट्रंक में रखने के लिए उठकर अपने कमरे में चली

गयी।

शकलदीप बाबू अपने कमरे की ओर लौट पड़े। पर कुछ दूर जाकर फिर घूम पड़े और जिस कमरे में जमुना गई थी, उसके दरवाजे के सामने आकर खड़े हो गए और जमुना को ट्रंक में रुपए बंद करते हुए देखते रहे। फिर बोले, "गलती किसी की नहीं। सारा दोष तो मेरा है। देखो न, मैं बाप होकर कहता हूं कि लड़का नाकाबिल है! नहीं, नहीं, सारी खुराफात की जड़ मैं ही हूं, और कोई नहीं।"

एक-दो क्षण वह खड़े रहे, लेकिन तब भी जमुना ने कोई उत्तर नहीं दिया तो कमरे में जाकर वह अपने कपड़े उतारने लगे।

नारायण ने उसी दिन डिप्टी-कलक्टरी की फीस तथा फार्म भेज दिए।

दूसरे दिन आदत के खिलाफ प्रात: काल ही शकलदीप बाबू की नींद उचट गई। वह हड़बड़ाकर आँखें मलते हुए उठ खड़े हुए और बाहर ओसारे में आकर चारों ओर देखने लगे। घर के सभी लोग निद्रा में निमग्न थे। सोए हुए लोगों की सांसों की आवाज और मच्छरों की भनभन सुनाई दे रही थी। चारों ओर अंधेरा था। लेकिन बाहर के कमरे से धीमी रोशनी आ रही थी। शकलदीप बाबू चौंक पड़े और पैरों को दबाए कमरे की ओर बढ़े।

उनकी उम्र पचास के ऊपर होगी। वह गोरे, नाटे और दुबले-पतले थे। उनके मुख पर अनगिनत रेखाओं का जाल बुना था और उनकी बाँहों तथा गर्दन पर चमड़े झूल रहे थे।

दरवाजे के पास पहुंचकर, उन्होंने पंजे के बल खड़े हो, होंठ दबाकर कमरे के अंदर झांका। उनका लड़का नारायण मेज पर रखी लालटेन के सामने सिर झुकाए ध्यानपूर्वक कुछ पढ़ रहा था।

शकलदीप बाबू कुछ देर तक आंखों को साश्चर्य फैलाकर अपने लड़के को देखते रहे, जैसे किसी आनंददायी रहस्य का उन्होंने अचानक पता लगा लिया हो। फिर वह चुपचाप धीरे-से पीछे हट गए और वहीं खड़े होकर ज़रा मुस्कराए और फिर दबे पाँव धीरे-धीरे वापस लौटे और अपने कमरे के सामने ओसारे के किनारे खड़े होकर आसमान को उत्सुकतापूर्वक निहारने लगे।

उनकी आदत छह, साढ़े छह बजे से पहले उठने की नहीं थी। लेकिन आज उठ गए थे, तो मन अप्रसन्न नहीं हुआ। आसमान में तारे अब भी चटक दिखाई दे रहे थे और बाहर के पेड़ों को हिलाती हुई और खपड़े को स्पर्श करके आँगन में न मालूम किस दिशा से आती ताजी हवा उनको आनंदित एवं उत्साहित कर रही थी। वह पुन: मुस्करा पड़े और उन्होंने धीरे-से फुसफुसाया, "चलो, अच्छा ही है।"

और अचानक उनमें न मालूम कहां का उत्साह आ गया। उन्होंने उसी समय ही दातौन करना शुरू कर दिया। इन कार्यों से निबटने के बाद भी अंधेरा ही रहा, तो बाल्टी में पानी भरा और उसे गुसलखाने में ले जाकर स्नान करने लगे। स्नान से निवृत्त होकर जब वह बाहर निकले, तो उनके शरीर में एक अपूर्व ताजगी तथा मन में एक अवर्णनीय उत्साह था।

यद्यपि उन्होंने अपने सभी कार्य चुपचाप करने की कोशिश की थी, तो भी देह दुर्बल होने के कारण कुछ खटपट हो गई, जिसके परिणामस्वरूप उनकी पत्नी की नींद खुल गई। जमुना को तो पहले चोर-वोर का संदेह हुआ, लेकिन उसने झटपट आकर जब देखा, तो आश्चर्यचकित हो गई। शकलदीप बाबू आंगन में खड़े-खड़े आकाश को निहार रहे थे।

जमुना ने चिंतातुर स्वर में कहा, "इतनी जल्दी स्नान की जरूरत क्या थी? इतना सबेरे तो कभी भी नहीं उठा जाया जाता था? कुछ हो-हवा गया, तो?"

शकलदीप बाबू झेंप गए। झूठी हँसी हँसते हुए बोले, "धीरे-धीरे बोलो, भाई, बबुआ पढ़ रहे हैं।"

जमुना बिगड़ गई, "धीरे-धीरे क्यों बोलूँ, इसी लच्छन से परसाल बीमार पड़ जाया गया था।"

शकलदीप बाबू को आशंका हुई कि इस तरह बातचीत करने से तकरार बढ़ जाएगी, शोर-शराबा होगा, इसलिए उन्होंने पत्नी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह पीछे घूम पड़े और अपने कमरे में आकर लालटेन जलाकर चुपचाप रामायण का पाठ करने लगे।

पूजा समाप्त करके जब वह उठे, तो उजाला हो गया था। वह कमरे से बाहर निकल आए। घर के बड़े लोग तो जाग गए थे,पर बच्चे अभी तक सोए थे।

जमुना भंडार-घर में कुछ खटर-पटर कर रही थी। शकलदीप बाबू ताड़ गए और वह भंडार-घर के दरवाजे के सामने जाकर खड़े हो गए और कमर पर दोनों हाथ रखकर कुतूहल के साथ अपनी पत्नी को कुंडे में से चावल निकालते हुए देखते रहे।

कुछ देर बाद उन्होंने प्रश्न किया, "नारायण की अम्मा, आजकल तुम्हारा पूजा-पाठ नहीं होता क्या?" और झेंपकर वह मुस्कराए।

शकलदीप बाबू प्रयागराज में निवास करने वाले एक साधुबाबा से, जो एक बार पर्यटन करते हुए यहाँ आ पहुँचे थे, गुरुमुख हो गए थे। आशा उनको यह थी कि घर की औरतें भी उन्हीं बाबा से गुरुमुख हो जाएँगी, परन्तु जैसा कहा जाता है, औरतों की जात का कोई ठिकाना नहीं, उन्होंने दूर के रिश्ते की एक बुढ़िया चाची के प्रवचन से प्रभावित होकर चुपके से राधास्वामी धर्म की दीक्षा ले ली।

शकलदीप बाबू इसके पूर्व सादा राधास्वामीवादियों पर बिगड़ते थे और मौका-बेमौका उनकी कड़ी आलोचना भी करते थे। इसको लेकर औरतों में कभी-कभी रोना-पीटना तक भी हो जाता था। इसलिए आज भी जब शकलदीप बाबू ने पूजा-पाठ की बात की, तो जमुना ने समझा कि वह व्यंग कर रहे हैं। उसने भी प्रत्युत्तर दिया, "हम लोगों को पूजा-पाठ से क्या मतलब? हमको तो नरक में ही जाना है। जिनको सरग जाना हो, वह करें।"

"लो, बिगड़ गई," शकलदीप बाबू मंद-मंद मुस्कराते हुए झट-से-बोले, "अरे, मैं मजाक थोड़े कर रहा था! मैं बड़ी गलती पर था, राधास्वामी तो बड़े प्रभावशाली देवता हैं।"

जमुना को राधास्वामी को देवता कहना बहुत बुरा लगा और वह तिनककर बोली, "राधास्वामी को देवता कहते हैं? वह तो परमपिता परमेश्वर हैं, उनका लोक सबसे ऊपर है, उसके नीचे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लोग आते हैं।"

"ठीक है, ठीक है, लेकिन कुछ पूजा-पाठ भी करोगी? सुनते हैं सच्चे मन से राधास्वामी की पूजा करने से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।" शकलदीप बाबू उत्तर देकर काँपते होंठों में मुस्कराने लगे।

जमुना ने पुन: भूल सुधार किया, "इसमें दिखाना थोड़े होता है, मन में नाम ले लिया जाता है। सभी मनोरथ बन जाते हैं और मरने के बाद आत्मा परमपिता में मिल जाती है। फिर चौरासी नहीं भुगतना पड़ता।"

शकलदीप बाबू ने सोत्साह कहा, "ठीक है, बहुत अच्छी बात है। जरा और सबेरे उठकर नाम ले लिया करो। सुबह नहाने से तबीयत दिन-भर साफ रहती है। कल से तुम भी शुरू कर दो। मैं तो अभागा था कि मेरी आँखें आज तक बंद रहीं। खैर कोई बात नहीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, कल से तुम भी सबेरे चार बजे उठ जाना।

उनको भय हुआ कि जमुना कहीं उनके प्रस्ताव का विरोध न करे, इसलिए इतना कहने के बाद वह पीछे घूमकर खिसक गए। लेकिन अचानक कुछ याद करके वह लौट पड़े।

पास आकर उन्होंने पत्नी से मुस्कराते हुए पूछा, "बबुआ के लिए नाश्ते का इंतजाम क्या करोगी?"

"जो रोज होता है, वही होगा, और क्या होगा?" उदासीनतापूर्वक जमुना ने उत्तर दिया।

"ठीक है, लेकिन आज हलवा क्यों नहीं बना लेतीं? घर का बना सामान अच्छा होता है। और कुछ मेवे मंगा लो।"

"हलवे के लिए घी नहीं है। फिर इतने पैसे कहाँ हैं?" जमुना ने मजबूरी जाहिर की।

"पचास रुपए तो बचे हैं न, उसमें से खर्च करो। अन्न-जल का शरीर, लड़के को ठीक से खाने-पीने को न मिलेगा, तो वह इम्तहान क्या

देगा? रुपए की चिंता मत करो, मैं अभी जिंदा हूँ!" इतना कहकर शकलदीप बाबू ठहाका लगाकर हँस पड़े।

वहां से हटने के पूर्व वह पत्नी को यह भी हिदायत देते गए, "एक बात और करो। तुम लड़के लोगों से डाँटकर कह देना कि वे बाहर के कमरे में जाकर बाजार न लगाएँ, नहीं तो मार पड़ेगी। पढ़ने में बाधा पहुंचेगी। दूसरी बात यह कि बबुआ से कह देना वह बाहर के कमरे में बैठकर इत्मीनान से पढ़ें, मैं बाहर सहन में बैठ लूँगा।"

शकलदीप बाबू सबेरे एक-डेढ़ घंटे बाहर के कमरे में बैठते थे। वहां वह मुवक्किलों के आने की प्रतीक्षा करते और उन्हें समझाते-बुझाते।

और वह उस दिन सचमुच ही मकान के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे, जहां पर्याप्त छाया रहती थी, एक मेज और कुर्सियाँ लगाकर बैठ गए। जान-पहचान के लोग वहाँ से गुजरे, तो उन्हें वहां बैठे देखकर आश्चर्य हुआ। जब सड़क से गुजरते हुए बब्बनलाल पेशकार ने उनसे पूछा कि 'भाई साहब, आज क्या बात है?' तो उन्होंने जोर से चिल्लाकर कहा कि 'भीतर बड़ी गर्मी है।' और उन्होंने जोकर की तरह अपना मुँह बना दिया और अंत में ठहाका मारकर हँस पड़े, जैसे कोई बहुत बड़ा मजाक कर दिया हो।

शाम को जहाँ रोज वह पहले ही कचहरी से आ जाते थे, उस दिन देर से लौटे। उन्होंने पत्नी के हाथ में चार रुपए तो दिए ही, साथ ही दो सेब तथा कैंची सिगरेट के पाँच पैकेट भी बढ़ा दिए।

"सिगरेट क्या होगी?" जमुना ने साश्चर्य से पूछा।

"तुम्हारे लिए है," शकलदीप बाबू ने धीरे से कहा और दूसरी ओर देखकर मुस्कराने लगे, लेकिन उनका चेहरा शर्म से कुछ तमतमा गया।

जमुना ने माथे पर की साड़ी को नीचे खींचते हुए कहा, "कभी सिगरेट पी भी है कि आज ही पीऊँगी। इस उम्र में मजाक करते लाज नहीं आती?"

शकलदीप बाबू कुछ बोले नहीं और थोड़ा मुस्कराकर इधर-उधर देखने लगे। फिर गंभीर होकर उन्होंने दूसरी ओर देखते हुए धीरे-से कहा, "बबुआ को दे देना," और वह तुरंत वहाँ से चलते बने।

जमुना भौंचक होकर कुछ देर उनको देखती रही, क्योंकि आज के पूर्व तो वह यही देखती आ रही थी कि नारायण के धूम्रपान के वह सख्त खिलाफ रहे हैं और इसको लेकर कई बार लड़के को डाँट-डपट चुके हैं।

उसकी समझ में कुछ न आया, तो वह यह कहकर मुस्करा पड़ी कि बुद्धि संठिया गई है।

नारायण दिन-भर पढ़ने-लिखने के बाद टहलने गया हुआ था।

शकलदीप बाबू जल्दी से कपड़े बदलकर हाथ में झांड़ू ले बाहर के कमरे में जा पहुंचे। उन्होंने धीरे-धीरे कमरे को अच्छी तरह झाड़ा-बुहारा, इसके बाद नारायण की मेज को साफ किया तथा मेजपोश को जोर-जोर से कई बार झाड़-फटककर सफाई के साथ उस पर बिछा दिया। अंत में नारायण की चारपाई पर पड़े बिछौने को खोलकर उसमें की एक-एक चीज को झाड़-फटकारकर यत्नपूर्वक बिछाने लगे।

इतने में जमुना ने आकर देखा, तो मृदु स्वर में कहा, "कचहरी से आने पर यही काम रह गया है क्या? बिछौना रोज बिछ ही जाता है और कमरे की महरिन सफाई कर ही देती है।"

"अच्छा, ठीक है। मैं अपनी तबीयत से कर रहा हूँ, कोई जबरदस्ती थोड़ी है।" शकलदीप बाबू के मुख पर हल्के झेंप का भाव अंकित हो गया था और वह अपनी पत्नी की ओर न देखते हुए ऐसी आवाज में बोले, जैसे उन्होंने अचानक यह कार्य आरंभ कर दिया था- और जब इतना कर ही लिया है, तो बीच में छोड़ने से क्या लाभ, पूरा ही कर लें।

कचहरी से आने के बाद रोज का उनका नियम यह था कि वह कुछ नाश्ता-पानी करके चारपाई पर लेट जाते थे। उनको अक्सर नींद आ जाती थी और वह लगभग आठ बजे तक सोते रहते थे। यदि नींद न भी आती, तो भी वह इसी तरह चुपचाप पड़े रहते थे।

"नाश्ता तैयार है," यह कहकर जमुना वहाँ से चली गई।

शकलदीप बाबू कमरे को चमाचम करने, बिछौने लगाने तथा कुर्सियों को तरतीब से सजाने के पश्चात आँगन में आकर खड़े हो गए और बेमतलब ठनककर हँसते हुए बोले, "अपना काम सदा अपने हाथ से करना चाहिए, नौकरों का क्या ठिकाना?"

लेकिन उनकी बात पर संभवत: किसी ने ध्यान नहीं दिया और न उसका उत्तर ही।

धीरे-धीरे दिन बीतते गए और नारायण कठिन परिश्रम करता रहा।

कुछ दिनों से शकलदीप बाबू सांयकाल घर से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित शिवजी के एक मन्दिर में भी जाने लगे थे। वह बहुत चलता मंदिर था और उसमें भक्तजनों की बहुत भीड़ होती थी। कचहरी से आने के बाद वह नारायण के कमरे को झाड़ते-बुहारते, उसका बिछौना लगाते, मेज- कुर्सियाँ सजाते और अंत में नाश्ता करके मंदिर के लिए रवाना हो जाते। मंदिर में एक-डेढ़ घंटे तक रहते और लगभग दस बजे घर आते।

एक दिन जब वह मंदिर से लौटे, तो साढ़े दस बज गए थे। उन्होंने दबे पाँव ओसारे में पाँव रखा और अपनी आदत के अनुसार कुछ देर तक मुस्कराते हुए झाँक-झाँककर कोठरी में नारायण को पढ़ते हुए देखते रहे।

फिर भीतर जा अपने कमरे में छड़ी रखकर, नल पर हाथ-पैर धोकर, भोजन के लिए चौके में जाकर बैठ गए।

पत्नी ने खाना परोस दिया। शकलदीप बाबू ने मुँह में कौर चुभलाते हुए पूछा, "बबुआ को मेवे दे दिए थे।

वह आज सायंकाल जब कचहरी से लौटे थे, तो मेवे लेते आए थे। उन्होंने मेवे को पत्नी के हवाले करते हुए कहा था कि इसे सिर्फ नारायण को ही देना और किसी को नहीं।

जमुना को झपकी आ रही थी, लेकिन उसने पति की बात सुन ली, चौंककर बोली, "कहाँ? मेवा ट्रंक में रख दिया था, सोचा था, बबुआ घूमकर आएँगे तो चुपके से दे दूँगी। पर लड़के तो दानव-दूत बने हुए हैं, ओना-कोना, अँतरा-सँतरा, सभी जगह पहुंच जाते हैं। टुनटुन ने कहीं से देख लिया और उसने सारा का सारा खा डाला।"

टुनटुन शकलदीप बाबू का सबसे छोटा बारह वर्ष का अत्यंत ही नटखट लड़का था।

"क्यों?" शकलदीप बाबू चिल्ला पड़े। उनका मुँह खुल गया था और उनकी जीभ पर रोटी का एक छोटा टुकड़ा दृष्टिगोचर हो रहा था।

जमुना कुछ न बोली।

अब शकलदीप बाबू ने गुस्से में पत्नी को मुँह चिढ़ाते हुए कहा, "खा गया, खा गया! तुम क्यों न खा गईं! तुम लोगों के खाने के लिए ही लाता हूँ न? हुँ! खा गया!"

जमुना भी तिनक उठी, " तो क्या हो गया? कभी मेवा-मिश्री, फल-मूल तो उनको मिलता नहीं, बेचारे खुद्दी-चुन्नी जो कुछ मिलता है, उसी पर सब्र बांधे रहते हैं। अपने हाथ से खरीदकर कभी कुछ दिया भी तो नहीं गया। लड़का ही तो है, मन चल गया, खा लिया। फिर मैंने उसे बहुत मारा भी, अब उसकी जान तो नहीं ले लूँगी। "

"अच्छा तो खाओ तुम और तुम्हारे लड़के! खूब मजे में खाओ! ऐसे खाने पर लानत!" वह गुस्से से भर-थर काँपते हुए चिल्ला पड़े और फिर चौके से उठकर कमरे में चले गए।

जमुना भय, अपमान और गुस्से से रोने लगी। उसने भी भोजन नहीं किया और वहाँ से उठकर चारपाई पर मुँह ढँककर पड़ रही।

लेकिन दूसरे दिन प्रात:काल भी शकलदीप बाबू का गुस्सा ठंडा न हुआ और उन्होंने नहाने धोने तथा पूजा पाठ करने के बाद सबसे पहला काम यह किया कि जब टुनटुन जागा, तो उन्होंने उसको अपने पास बुलाया और उससे पूछा कि उसने मेवा क्यों खाया? जब उसको कोई उत्तर न सूझा और वह भक्कू बनकर अपने पिता की ओर देखने लगा, तो शकलदीप बाबू ने उसे कई तमाचे जड़ दिए।

डिप्टी-कलक्टरी की परीक्षा इलाहाबाद में होने वाली थी और वहाँ रवाना होने के दिन आ

गए। इस बीच नारायण ने इतना अधिक परिश्रम किया कि सभी आश्चर्यचकित थे। वह अट्ठारह-उन्नीस घंटे तक पढ़ता। उसकी पढ़ाई में कोई बाधा उपस्थित नहीं होने पाती, बस उसे पढ़ना था। उसका कमरा साफ मिलता, उसका बिछौना बिछा मिलता, दोनों जून गांव के शुद्ध घी के साथ दाल-भात, रोटी, तरकारी मिलती। शरीर की शक्ति तथा दिमाग की ताजगी को बनाए रखने के लिए नाश्ते में सबेरे हलवा-दूध तथा शाम को मेवा या फल। और तो और, लड़के की तबीयत न उचटे, इसलिए सिगरेट की भी समुचित व्यवस्था थी। जब सिगरेट के पैकेट खत्म होते, तो जमुना उसके पास चार-पाँच पैकेट और रख आती।

जिस दिन नारायण को इलाहाबाद जाना था, शकलदीप बाबू की छुट्टी थी और वह सबेरे ही घूमने निकल गए। वह कुछ देर तक कंपनी गार्डन में घूमते रहे, फिर वहां तबीयत न लगी, तो नदी के किनारे पहुंच गए। वहां भी मन न लगा, तो अपने परम मित्र कैलाश बिहारी मुख्तार के यहाँ चले गए। वहां बहुत देर तक गप-सड़ाका करते रहे, और जब गाड़ी का समय निकट आया, तो जल्दी-जल्दी घर आए।

गाड़ी नौ बजे खुलती थी। जमुना का नारायण की पत्नी निर्मला ने सबेरे ही उठकर जल्दी-जल्दी खाना बना लिया था। नारायण ने खाना खाया और सबको प्रणाम कंर स्टेशन को चल पड़ा। शकलदीप बाबू भी स्टेशन गए।

नारायण को विदा करने के लिए उसके चार-पाँच मित्र भी स्टेशन पर पहुँचे थे। जब तक गाड़ी नहीं आई थी, नारायण प्लेटफार्म पर उन मित्रों से बातें करता रहा। शकलदीप बाबू अलग खड़े इधर-उधर इस तरह देखते रहे, जैसे नारायण ने उनका कोई परिचय न हो। और जब गाड़ी और और नारायण अपने पिता तथा मित्रों के सहयोग से गाड़ी में पूरे सामान के साथ चढ़ गया, तो शकलदीप बाबू वहां से धीरे से खिसक गए और व्हीलर के बुकस्टाल पर जा खड़े हुए।

बुकस्टाल का आदमी जान-पहचान का था, उसने नमस्कार करके पूछा,

"कहिए, मुख्तार साहब, आज कैसे आना हुआ?"

शकलदीप बाबू ने संतोषपूर्वक मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "लड़का इलाहाबाद जा रहा है, डिप्टी-कलक्टरी का इम्तहान देने। शाम तक पहुँच जाएगा। ड्योढ़े दर्जे के पास जो डिब्बा है न, उसी में है। नीचे जो चार-पांच लड़के खड़े हैं, वे उसके मित्र हैं। सोचा भाई हम लोग बूढ़े ठहरे, लड़के इम्तहान-विम्तहान की बात कर रहे होंगे, क्या समझेंगे, इसलिए इधर चला आया।" उनकी आँखें हास्य से संकुचित हो गईं।

वहां वह थोड़ी देर तक रहे। इसके बाद जाकर घड़ी में समय देखा, कुछ देर तक तारघर के बाहर तार बाबू को खटर-पटर करते हुए निहारा और फिर वहां से हटकर रेलगाड़ियों के आने-जाने का टाइम टेबुल पढ़ने लगा। लेकिन उनका ध्यान संभवतः गाड़ी की ओर ही था, क्योंकि जब ट्रेन खुलने की घंटी बजी, तो वहाँ से भागकर नारायण के मित्रों के पीछे आ खड़े हुए।

नारायण ने जब उनको देखा, तो उसने झटपट नीचे उतरकर पैर छुए।

"खुश रहो, बेटा भगवान तुम्हारी मनोकामना पूरी करे!" उन्होंने लड़के से बुदबुदाकर कहा और दूसरी ओर देखने लगे।

नारायण बैठ गया और अब गाड़ी खुलने ही वाली थी। अचानक शकलदीप बाबू का दाहिनी हाथ अपने कोट की जेब में गया। उन्होंने जेब से कोई चीज लगभग बाहर निकाल ली, और वह कुछ आगे भी बढ़े, लेकिन फिर न मालूम क्या सोचकर रुक गए। उनका चेहरा कुछ तमतमा- सा गया और जल्दीबाजी में वह इधर-उधर देखने लगे।

गाड़ी सीटी देकर खुल गई तो शकलदीप बाबू चौंक उठे। उन्होंने जेब से वह चीज निकालकर मुट्ठी में बाँध ली और उसे नारायण को देने के लिए दौड़ पड़े।

वह दुर्बल तथा बूढ़े आदमी थे, इसलिए उनसे तेज क्या दौड़ा, वह पैरों में फुर्ती लाने के लिए अपने हाथों को इस तरह भाँज रहे थे, जैसे कोई रोगी, मरियल लड़का अपने साथियों के बीच खेल-कूद के दौरान कोई हल्की-फुल्की शरारत करने के बाद तेजी से दौड़ने के लिए गर्दन को झुकाकर हाथों को चक्र की भाँति घुमाता है। उनके पैर थप-थप की आवाज के साथ प्लेटफार्म पर गिर रहे थे, और उनकी हरकतों का उनके मुख पर कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, बस यही मालूम होता कि वह कुछ परेशान हैं। प्लेटफार्म पर एकत्रित लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया। कुछ लोगों ने मौज में आकर जोर से ललकारा, कुछ ने किलकारियां मारीं और कुछ लोगों ने दौड़ के प्रति उनकी तटस्थ मुद्रा को देखकर बेतहाशा हँसना आरंभ किया। लेकिन यह उनका सौभाग्य ही था कि गाड़ी अभी खुली ही थी और स्पीड में नहीं आई थी। परिणामस्वरूप उनका हास्यजनक प्रयास सफल हुआ और उन्होंने डिब्बे के सामने पहुँचकर उत्सुक तथा चिंतित मुद्रा में डिब्बे से सिर निकालकर झाँकते हुए नारायण के हाथ में एक पुड़िया देते हुए कहा, "बेटा, इसे श्रद्धा के साथ खा लेना, भगवान शंकर का प्रसाद है।"

पुड़िया में कुछ बताशे थे, जो उन्होंने कल शाम को शिवजी को चढ़ाए थे और जिसे, पता नहीं क्यों, नारायण को देना भूल गए थे।

नारायण के मित्र कुतूहल से मुस्कराते हुए उनकी ओर देख रहे थे, और जब वह पास आ गए, तो एक ने पूछा, "बाबू जी, क्या बात थी, हमसे कह देते।"

शकलदीप बाबू यह कहकर कि, कोई बात नहीं, कुछ रुपए थे, सोचा, मैं ही दे दूँ,' तेजी से आगे बढ़ गए।

परीक्षा समाप्त होने के बाद नारायण घर वापस आ गया। उसने सचमुच पर्चे बहुत अच्छे किए थे और उसने घरवालों से साफ-साफ कह दिया कि यदि कोई बेईमानी न हुई, तो वह इंटरव्यू में अवश्य बुलाया जाएगा। घरवालों की बात तो दूसरी थी, लेकिन जब मुहल्ले और शहर के लोगों से यह बात सुनी, तो उन्होंने विश्वास नहीं किया। लोग व्यंग में कहने लगे, हर साल तो यही कहते हैं बच्चे! वह कोई दूसरे होते हैं, जो इंटरव्यू में बुलाए जाते हैं!

लेकिन बात नारायण ने झूठ नहीं कही थी, क्योंकि एक दिन उसके पास सूचना आई कि इलाहाबाद में प्रादेशिक लोक सेवा आयोग के समक्ष इंटरव्यू के लिए उपस्थित होना है।

यह समाचार बिजली की तरह सारे शहर में फैल गया। बहुत साल बाद इस शहर से कोई लड़का डिप्टी-कलक्टरी के इंटरव्यू के लिए बुलाया गया था। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

सायंकाल कचहरी से आने पर शकलदीप बाबू सीधे आँगन में जा खड़े हो गए और जोर से ठठाकर हँस पड़े। फिर कमरे में जाकर कपड़े उतारने लगे।

शकलदीप बाबू ने कोट को खूँटी पर टाँगते हुए लपककर आती हुई जमुना से कहा, "अब करो न राज! हमेशा शोर मचाए रहती थी कि यह नहीं है, वह नहीं है! यह मामूली बात नहीं है कि बबुआ इंटरव्यू में बुलाए गए हैं, आया ही समझो!

"जब आ जाएँ, तभी न," जमुना ने कंजूसी से मुस्कराते हुए कहा।

शकलदीप बाबू थोड़ा हँसते हुए बोले, "तुमको अब भी संदेह है? लो, मैं कहता हूं कि बबुआ जरूर आएँगे, जरूर आएँगे! नहीं आए, तो मैं अपनी मूँछ मुड़वा दूँगा। और कोई कहे या न कहे, मैं तो इस बात को पहले से ही जानता हूं। अरे, मैं ही क्यों, सारा शहर यही कहता है अंबिका बाबू वकील मुझे बधाई देते हुए बोले, 'इंटरव्यू में बुलाए जाने का मतलब यह है कि अगर इंटरव्यू थोड़ा भी अच्छा हो गया, तो चुनाव निश्चित है!' मेरी नाक में दम था जो भी सुनता, बधाई देने चला आता।"

"मुहल्ले के लड़के मुझे भी आकर बधाई दे गए हैं। जानकी, कमल और गौरी तो अभी गए हैं। जमुना ने स्वप्निल आँखों से अपने पति को देखते हुए सूचना दी।

"तो तुम्हारी कोई मामूली हस्ती है! अरे, तुम डिप्टी-कलक्टर की माँ हो न, जी!" इतना कहकर शकलदीप बाबू ठहाका मारकर हँस पड़े।

जमुना कुछ नहीं बोली, बल्कि उसने मुस्की काटकर साड़ी का पल्ला सिर के आगे थोड़ा और खींचकर मुँह टेढ़ा कर लिया।

शकलदीप बाबू ने जूते निकालकर चारपाई

पर बैठते हुए धीरे से कहा, "अरे भाई, हमको-तुमको क्या लेना है, एक कोने में पड़कर रामनाथ जपा करेंगे। लेकिन मैं तो अभी यह सोच रहा हूँ कि कुछ साल तक और मुख्तारी करूँगा। नहीं, यही ठीक रहेगा।" उन्होंने गाल फुलाकर एक दो-बार मूंछ पर ताव दिए।

जमुना ने इसका प्रतिवाद किया, "लड़का मानेगा थोड़े, खींच ले जाएगा। हमेशा यह देखकर उसकी छाती फटती रहती है कि बाबू जी इतनी मेहनत करते हैं और वह कुछ भी मदद नहीं करता।"

"कुछ कह रहा था क्या?" शकलदीप बाबू ने धीरे- से पूछा और पत्नी की ओर न देखकर दरवाजे के बाहर मुँह बाकर देखने लगे।

जमुना ने आश्वासन दिया, "मैं जानती नहीं क्या? उसका चेहरा बताता है। बाप को इतना काम करते देखकर उसको कुछ अच्छा थोड़ा लगता है!" अंत में उसने नाक सुड़क लिए।

नारायण पंद्रह दिन बाद इंटरव्यू देने गया। और उसने इंटरव्यू भी काफी अच्छा किया। वह घर वापस आया, तो उसके हृदय में अत्यधिक उत्साह था, और जब उसने यह बताया कि जहाँ और लड़कों का पन्द्रह-बीस मिनट तक ही इंटरव्यू हुआ, उसका पूरे पचास मिनट तक इंटरव्यू होता रहा और उसने सभी प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर दिए, तो अब यह सभी ने मान लिया कि नारायण का लिया जाना निश्चित है।

दूसरे दिन कचहरी में फिर वकीलों और मुख्तारों ने शकलदीप बाबू को बधाइयाँ दीं और विश्वास प्रकट किया कि नारायण अवश्य चुन लिया जाएगा। शकलदीप बाबू मुस्कराकर धन्यवाद देते और लगे हाथों नारायण के व्यक्तिगत जीवन की एक दो बातें भी सुना देते और अंत में सिर को आगे बढ़ाकर फुसफुसाहट में दिल का राज प्रकट करते, " आपसे कहता हूं, पहले मेरे मन में शंका थी, शंका क्या सोलहों आने शंका थी, लेकिन आप लोगों की दुआ से अब वह दूर हो गई है।"

जब वह घर लौटे, तो नारायण, गौरी और कमल दरवाजे के सामने खड़े बातें कर रहे थे। नारायण इंटरव्यू के संबंध में ही कुछ बता रहा था। वह अपने पिताजी को आता देखकर धीरे-धीरे बोलने लगा। शकलदीप बाबू चुपचाप वहाँ से गुजर गए, लेकिन दो-तीन गज ही आगे गए होंगे कि गौरी कि आवाज उनको सुनाई पड़ी, "अरे, तुम्हारा हो गया, अब तुम मौज करो!"

इतना सुनते ही शकलदीप बाबू घूम पड़े और लड़कों के पास आकर उन्होंने पूछा, "क्या?" उनकी आँखें संकुचित हो गई थीं और उनकी मुद्रा ऐसी हो गई थी, जैसे किसी महफिल में जबरदस्ती घुए आए हों।

लड़के एक दूसरे को देखकर शिष्टतापूर्वक होंठों में मुस्कराए। फिर गौरी ने अपने कथन को स्पष्ट किया, "मैं कह रहा था नारायण से, बाबू जी, कि उनका चुना जाना निश्चित है।

शकलदीप बाबू ने सड़क से गुजरती हुई एक मोटर को गौर से देखने के बाद धीरे-धीरे कहा, "हाँ, देखिए न, जहाँ एक-से-एक धुरंधर लड़के पहुँचते हैं, सबसे तो बीस मिनट ही इंटरव्यू होता है, पर इनसे पूरे पचास मिनट! अगर नहीं लेना होता, तो पचास मिनट तक तंग करने की क्या जरूरत थी, पाँच-दस मिनट पूछताछ करके. .."

गौरी ने सिर हिलाकर उनके कथन का समर्थन किया और कमल ने कहा, "पहले का जमाना होता, तो कहा भी नहीं जा सकता, लेकिन अब तो बेईमानी-वेईमानी उतनी नहीं होती होगी।"

शकलदीप बाबू ने आंखें संकुचित करके हल्की-फुल्की आवाज में पूछा, "बेईमानी नहीं होती न?"

"हाँ, अब उतनी नहीं होती। पहले बात दूसरी थी। वह जमाना अब लद गया।" गौरी ने उत्तर दिया।

शकलदीप बाबू अचानक अपनी आवाज पर जोर देते हुए बोले, "अरे, अब कैसी बेईमानी साहब, गोली मारिए, अगर बेईमानी ही करनी होती, तो इतनी देर तक इनका इंटरव्यू होता? इंटरव्यू में बुलाया ही न होता और बुलाते भी तो चार-पाँच मिनट पूछताछ करके बिदा कर देते।"

इसका किसी ने उत्तर नहीं दिया, तो वह मुस्कराते हुए घूमकर घर में चले गए।

घर में पहुँचने पर जमुना से बोले, "बबुआ अभी से ही किसी अफसर की तरह लगते हैं। दरवाजे पर बबुआ, गौरी और कमल बातें कर रहे हैं। मैंने दूर ही से गौर किया, जब नारायण बाबू बोलते हैं, तो उनके बोलने और हाथ हिलाने से एक अजीब-सी शान टपकती है। उनके दोस्तों में ऐसी बात कहाँ?"

"आज दोपहर में मुझसे कह रहे थे कि तुझे मोटर में घुमाऊँगा।" जमुना ने खुशखबरी सुनाई।

शकलदीप बाबू खुश होकर नाक सुड़कते हुए बोले, "अरे, तो उसको मोटर की कमी होगी, घूमना न जितना चाहना।" वह सहसा चुप हो गए और खोए-खोए इस तरह मुस्कराने लगे, जैसे कोई स्वादिष्ट चीज खाने के बाद मन-ही-मन उसका मजा ले रहे हों।

कुछ देर बाद उन्होंने पत्नी से प्रश्न किया, "क्या कह रहा था, मोटर में घुमाऊंगा?" जमुना ने फिर वही बात दोहरा दी।

शकलदीप बाबू ने धीरे-से दोनों हाथों से ताली बजाते हुए मुस्कराकर कहा, "चलो, अच्छा है" उनके मुख पर अपूर्व स्वप्निल संतोष का भाव अंकित था।

सात-आठ दिनों में नतीजा निकलने का अनुमान था। सभी को विश्वास हो गया था कि नारायण ले लिया जाएगा और सभी नतीजे की बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे।

अब शकलदीप बाबू और भी व्यस्त रहने लगे। पूजा-पाठ का उनका कार्यक्रम पूर्ववत जारी था। लोगों से बातचीत करने में उनको काफी मजा आने लगा और वह बातचीत के दौरान ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते कि लोगों को कहना पड़ता कि नारायण अवश्य ही ले लिया जाएगा। वह अपने घर पर एकत्रित नारायण तथा उसके मित्रों की बातें छिपकर सुनते और कभी-कभी अचानक उनके दल में घुस जाते तथा जबरदस्ती बात करने लगे। कभी-कभी नारायण को अपने पिता की यह हरकत बहुत बुरी लगती और वह क्रोध में दूसरी ओर देखने लगता। रात में शकलदीप बाबू चौंककर उठ बैठते और बाहर आकर कमरे में लड़के को सोते हुए देखने लगते या आँगन में खड़े होकर आकाश को निहारने लगते।

एक दिन उन्होंने सबेरे ही सबको सुनाकर जोर से कहा, "नारायण की माँ मैंने आज सपना देखा है कि नारायण बाबू डिप्टी-कलक्टर हो गए।"

जमुना रसोई के बरामदे में बैठी चावल फटक रही थी और उसी के पास नारायण की पत्नी, निर्मला, घूँघट काढ़े दाल बीन रही थी।

जमुना ने सिर उठाकर अपने पति की ओर देखते हुए प्रश्न किया, "सपना सबेरे दिखाई पड़ा था क्या?"

"सबेरे के नहीं तो शाम के सपने के बारे में तुमसे कहने आऊँगा? अरे, एकदम ब्राह्ममुहूर्त में देखा था! देखता हूँ कि अखबार में नतीजा निकल गया है और उसमें नारायण बाबू का भी नाम हैं अब यह याद नहीं कि कौन नंबर था, पर इतना कह सकता हूँ कि नाम काफी ऊपर था।"

"अम्मा जी, सबेरे का सपना तो एकदम सच्चा होता है न! निर्मला ने धीरे-से जुमना से कहा।"

मालूम पड़ता है कि निर्मला की आवाज शकलदीप बाबू ने सुन ली, क्योंकि उन्होंने बिहँसकर प्रश्न किया, "कौन बोल रहा है, डिप्टाइन है क्या?" अंत में वह ठहाका मारकर हँस पड़े।

"हाँ, कह रही हैं कि सबेरे का सपना सच्चा होता है। सच्चा होता ही है।" जमुना ने मुस्कराकर बताया।

निर्मला शर्म से संकुचित हो गई। उसने अपने बदन को सिकोड़ तथा पीठ को नीचे झुकाकर अपने मुँह को अपने दोनों घुटनों के बीच छिपा लिया।

अगले दिन भी सबेरे शकलदीप बाबू ने घरवालों को सूचना दी कि उन्होंने आज भी हू-ब-हू वैसा ही सपना देखा है।

जमुना ने अपनी नाक की ओर देखते हुए, "सबेरे का सपना तो हमेशा ही सच्चा होता हैं जब बहू को लड़का होने वाला था, मैंने सबेरे-सबेरे सपना देखा कि कोई सरग की देवी हाथ में बाक लिए आसमान से आँगन में उतर रही है। बस,

मैंने समझ लिया कि लड़का ही है। लड़का ही निकला।"

शकलदीप बाबू ने जोश में आकर कहा, "और मान लो कि झूठ है, तो यह सपना एक दिन दिखाई पड़ता, दूसरे दिन भी हू-ब-बू वही सपना क्यों दिखाई देता, फिर वह भी ब्राह्ममुहूर्त में ही!"

"बहू ने भी ऐसा ही सपना आज सबेरे देखा है!"

"डिप्टाइन ने भी?" शकलदीप बाबू ने मुस्की काटते हुए कहा।

"हाँ, डिप्टाइन ने ही। ठीक सबेरे उन्होंने देखा कि एक बँगले में हम लोग रह रहे हैं और हमारे दरवाजे पर मोटर खड़ी है।" जमुना ने उत्तर दिया।

शकलदीप बाबू खोए-खोए मुस्कराते रहे। फिर बोले, "अच्छी बात है, अच्छी बात है।"

एक दिन रात को लगभग एक बजे शकलदीप बाबू ने उठकर पत्नी को जगाया और उसको अलग ले जाते हुए बेशर्म महाब्राह्मण की भाँति हँसते हुए प्रश्न किया, "कहो भाई, कुछ खाने को होगा? बहुत देर से नींद ही नहीं लग रही है, पेट कुछ माँग रहा है। पहले मैंने सोचा, जाने भी दो, यह कोई खाने का समय है, पर इससे काम बनते न दिखा, तो तुमको जगाया। शाम को खाया था, सब पच गया।"

जमुना अंचभे के साथ आँखें फाड़-फाड़कर अपने पति को देख रही थी। दांपत्य जीवन के इतने दीर्घकाल में कभी भी, यहां तक कि शादी के प्रारंभिक दिनों में भी, शकलदीप बाबू ने रात में उसको जगाकर कुछ खाने को नहीं मांगा था। वह झुँझला पड़ी और उसने अपना असंतोष व्यक्त किया, "ऐसा पेट तो कभी भी नहीं था। मालूम नहीं, इस समय रसोई में कुछ है या नहीं।"

शकलदीप बाबू झेंपकर मुस्कराने लगे।

एक दो क्षण बाद जमुना ने आंखें मलकर पूछा, "बबुआ के मेवे में से थोड़ा दूँ क्या?"

शकलदीप बाबू झट-से बोले, "अरे, राम-राम! मेवा तो, तुम जानती हो, मुझे बिलकुल पसंद नहीं। जाओ, तुम सोओ, भूख-वूख थोड़े है, मजाक किया था।"

यह कहकर वह धीरे-से अपने कमरे में चले गए। लेकिन वह लेटे ही थे कि जमुना कमरे में एक छिपुली में एक रोटी और गुड़ लेकर आई। शकलदीप बाबू हँसते हुए उठ बैठे।

शकलदीप बाबू पूजा-पाठ करते, कचहरी जाते, दुनियाभर के लोगों से दुनिया-भर की बातचीत करते, इधर-उधर मटरगश्ती करते और जब खाली रहते, तो कुछ न कुछ खाने को मांग बैठते। वह चटोर हो गए और उनके जब देखो, भूख लग जाती। इस तरह कभी रोटी-गुड़ खा लेते, कभी आलू भुनवाकर चख लेते और कभी हाथ पर चीनी ही लेकर फांक जाते। भोज में भी वह परिवर्तन चाहने लगे। कभी खिचड़ी की फरमाइश कर देते, कभी सत्तू-प्याज की, कभी सिर्फ रोटी-दाल की, कभी मकुनी की और कभी सिर्फ दाल-भात की ही। उनका समय कटता ही न था और वह समय काटना चाहते थे।

इस बदपरहेजी तथा मानसिक तनाव का नतीजा यह निकला कि वह बीमार पड़ गए। उनको बुखार तथा दस्त आने लगे।

उनकी बीमारी से घर के लोगों को बड़ी चिंता हुई। जमुना ने रुआँसी आवाज में कहा, "बार-बार कहती थी कि इतनी मेहनत न कीजिए, पर सुनता ही कौन है? अब भोगना पड़ा न!"

पर शकलदीप बाबू पर इसका कोई असर न हुआ। उन्होंने बात उड़ा दी।

"अरे, मैं तो कचहरी जाने वाला था, पर यह सोचकर रुक गया कि अब मुख्तारी तो छोड़नी ही है, थोड़ा आराम कर लें।"

"मुख्तारी जब छोड़नी होगी, होगी, इस समय तो दोनों जून की रोटी-दाल का इंतजाम करना है।" जमुना ने चिंता प्रकट की।

"अरे, तुम कैसी बात करती हो? बीमारी हैरानी तो सबको होती है, मैं मिट्टी का ढेला तो हूँ नहीं कि गल जाऊंगा। बस, एक-आध दिन की बात है। अगर बीमारी सख्त होती, तो मैं इस तरह टनक-टनककर बोलता?" शकलदीप बाबू ने समझाया और अंत में उनके होंठो पर एक क्षीण मुस्कराहट खेल गई।

वह दिन भर बेचैन रहे। कभी लेटते, कभी उठ बैठते और कभी बाहर निकलकर टहलने लगते। लेकिन दुर्बल इतने हो गए थे कि पांच-दस कदम चलते ही थक जाते और फिर कमरे में आकर लेटे रहते।

करते-करते शाम हुई और जब शकलदीप बाबू को यह बताया गया कि कैलाश बिहारी मुख्तार उनका समाचार लेने आए हैं, तो वह उठ बैठे और झटपट चादर ओढ़, हाथ में छड़ी ले पत्नी के लाख मना करने पर भी बाहर निकल आए। दस्त तो बंद हो गया था, पर बुखार अभी था और इतने ही समय में वह चिड़चिड़े हो गए थे।

कैलाशबिहारी ने उनको देखते ही चिंतातुर स्वर में कहा, "अरे, तुम कहाँ बाहर आ गए, मुझे ही भीतर बुला लेते।"

शकलदीप बाबू चारपाई पर बैठ गए और क्षीण हँसी हँसते हुए बोले, "अरे मुझे कुछ हुआ थोड़े है। सोचा, आराम करने की ही आदत डालूँ।" यह कहकर वह अर्थपूर्ण दृष्टि से अपने मित्र को देखकर मुस्कराने लगे।

सब हाल-चाल पूछने के बाद कैलाशबिहारी ने प्रश्न किया, "नारायण बाबू कहीं दिखाई नहीं दे रहे, कहीं घूमने गए हैं क्या?"

शकलदीप बाबू ने बनावटी उदासीनता प्रकट करते हुए कहा, "हाँ, गए होंगे कहीं, लड़के उनको छोड़ते भी तो नहीं, कोई-न-कोई आकर लिवा जाता है।"

कैलाशबिहारी ने सराहना की, "खूब हुआ, साहब! मैं भी जब इस लड़के को देखता था, दिल में सोचता था कि यह आगे चलकर कुछ-न-कुछ जरूर होगा। सह तो, साहब, देखने से ही पता लग जाता है। चाल में और बोलने-चालने के तरीके में कुछ ऐसा है कि... चलिए, हम सब इस माने में बहुत भाग्यशाली हैं।"

शकलदीप बाबू इधर-उधर देखने के बाद सिर को आगे बढ़ाकर सलाह-मशविरे की आवाज में बोले, "अरे भाई साहब, कहाँ तक बताऊँ? अपने मुँह से क्या कहना, पर ऐसा सीधा-सादा लड़का तो मैंने देखा नहीं, पढ़ने-लिखने का तो इतना शौक कि चौबीसों घंटे पढ़ता रहे। मुँह खोकर किसी से कोई चीज माँगता नहीं।"

कैलाशबिहारी ने भी अपने लड़के की तारीफ में कुछ बातें पेश कर दीं, "लड़के तो मेरे भी सीधे हैं, पर मझला लड़का शिवनाथ जितना गऊ है, उतना कोई नहीं। ठीक नारायण बाबू ही की तरह है!"

"नारायण तो उस जमाने का कोई ऋषि-मुनि मालूम पड़ता है," शकलदीप बाबू ने गंभीरतापूर्वक कहा, "बस, उसकी एक ही आदत है। मैं उसकी माँ को मेवा दे देता हूँ और नारायण रात में अनी माँ को जगाकर खाता है। भली-बुरी उसकी बस एक यही आदत है। अरे भैया, तुमसे बताता हूँ, लड़कपन में हमने इसका नाम पन्नालाल रखा था, पर एक दिन एक महात्मा घूमते हुए हमारे घर आए। उन्होंने नारायण का हाथ देखा और बोले, इसका नाम पन्नालाल-सन्नालाल रखने की जरूरत नहीं, बस आज से इसे नारायण कहा करो, इसके कर्म में राजा होना लिखा हैं पहले जमाने की बात दूसरी थी, लेकिन आजकल राजा का अर्थ क्या है" डिप्टी कलक्टर तो एक अर्थ में राजा ही हुआ!" अंत में आँखें मटकाकर उन्होंने मुस्कराने की कोशिश की, पर हाँफने लगे।

दोनों मित्र बहुत देर तक बातचीत करते रहे, और अधिकांश समय वे अपने-अपने लड़कों का गुणगान करते रहे।

घर के लोगों को शकलदीप बाबू की बीमारी से बहुत चिंता थी। बुखार के साथ दस्त भी था, इसलिए वह बहुत कमजोर हो गए थे, लेकिन वह बात को यह कहकर उड़ा देते, "अरे, कुछ नहीं, एक-दो दिन में मैं अच्छा हो जाऊँगा।" और एक वैद्य की कोई मामूली, सस्ती दवा खाकर दो दिन बाद वह अच्छे भी हो गए, लेकिन उनकी दुर्बलता पूर्ववत थी।

जिस दिन डिप्टी-कलक्टरी का नतीजा निकला, रविवार का दिन था। शकलदीप बाबू सबेरे रामायण का पाठ तथा नाश्ता करने के बाद मंदिर चले गए। छुट्टी के दिनों में वह मंदिर पहले ही चले जाते और वहां दो-तीन घंटे, और कभी-कभी तो चार-चार घंटे रहे जाते। वह आठ

बजे मन्दिर पहुँए गए। जिस गाड़ी से नतीजा आने वाला था, वह दस बजे आती थी।

शकलदीप बाबू पहले तो बहुत देर तक मंदिर की सीढ़ी पर बैठकर सुस्ताते रहे, वहाँ से उठकर ऊपर आए, तो नंदलाल पंडे ने, जो चंदन रगड़ रहा था, नारायण के परीक्षाफल के संबंध में पूछताछ की। शकलदीप वहाँ से जब उनको छुट्टी मिली, तो धूप काफी चढ़ गई थी। उन्होंने भीतर जाकर भगवान शिव के पिण्ड के समक्ष अपना माथा टेक दिया। काफी देर तक वह उसी तरह पड़े रहे। फिर उठकर उन्होंने चारों ओर घूम-घूमकर मंदिर के घंटे बजाकर मंत्रोच्चारण किए और गाल बजाए। अंत में भगवान के समक्ष पुन: दंडवत कर बाहर निकले ही थे कि जंगबहादुर सिंह मास्टर ने शिवदर्शनार्थ मंदिर में प्रवेश किया और उन्होंने शकलदीप बाबू को देखकर आश्चर्य प्रकट किया, "अरे, मुख्तार साहब! घर नहीं गए? डिप्टी-कलक्टरी का नतीजा तो निकल गया।"

शकलदीप बाबू का हृदय धक-से कर गया। उनके होंठ, काँपने लगे और उनहोंने कठिनता से मुस्कराकर पूछा, "अच्छा, कब आया?"

जंगबहादुर सिंह ने बताया, "अरे, दस बजे की गाड़ी से आया। नारायण बाबू का नाम तो अवश्य है, लेकिन..." वह कुछ आगे न बोल सके।

शकलदीप बाबू का हृदय जोरों से धक-धक कर रहा था। उन्होंने अपने सूखे होठों को जीभ से तर करते हुए अत्यंत ही धीमी आवाज में पूछा, "क्या कोई खास बात है?"

"कोई खास बात नहीं है। अरे, उनका नाम तो है ही, यह है कि ज़रा नीचे हैं दस लड़के लिए जाएँगे, लेकिन मेरा ख्याल है कि उनका नाम सोलहवाँ-सत्रहवाँ पड़ेगा। लेकिन कोई चिंता की बात नहीं, कुछ लड़के तो कलक्टरी में चले जाते हैं, कुछ मेडिकल में ही नहीं आते, और इस तरह पूरी-पूरी उम्मीद है कि नारायण बाबू ले ही लिए जाएंगे।"

शकलदीप बाबू का चेहरा फक पड़ गया। उनके पैरों में जोर नहीं था और मालूम पड़ता था कि वह गिर जाएंगे। जंगबहादुर सिंह तो मंदिर में चले गए। लेकिन वह कुछ देर तक वहीं सिर झुकाकर इस तरह खड़े रहे, जैसे कोई भूली बात याद कर रहे हों। फिर वह चौंक पड़े और अचानक उन्होंने तेजी से चलना शुरू कर दिया। उनके मुँह से धीमे स्वर में तेजी से शिव-शिव निकल रहा था। आठ-दस गज आगे बढ़ने पर उन्होंने चाल और तेज कर दी, पर शीघ्र ही बेहद थक गए और एक नीम के पेड़ के नीचे खड़े होकर हाँफने लगे।

चार-पाँच मिनट सुस्ताने के बाद उन्होंने फिर चलना शुरू कर दिया। वह छड़ी को उठाते-गिराते, छाती पर सिर गाड़े तथा शिव-शिव का जाप करते, हवा के हल्के झोंके से धीरे-धीरे टेढ़े-तिरछे उड़नेवाले सूखे पत्ते की भाँति डगमग-डगमग चले जा रहे थे। कुछ लोगों ने उनको नमस्ते किया, तो उन्होंने देखा नहीं, और कुछ लोगों ने उनको देखकर मुस्कराकर आपस में आलोचना-प्रत्यालोचना शुरू कर दी, तब भी उन्होंने कुछ नहीं देखा। लोगों ने संतोष से, सहानुभूति से तथा अफसोस से देखा, पर उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उनको बस एक ही धुन थी कि वह किसी तरह घर पहुंच जाएँ।

घर पहुँचकर वह अपने कमरे में चारपाई पर धम से बैठ गए। उनके मुँह से केवल इतना ही निकला, "नारायण की अम्माँ!"

सारे घर में मुर्दनी छाई हुई थी। छोटे से आँगन में गंदा पानी, मिट्टी, बाहर से उड़कर आए हुए सूखे पत्ते तथा गंदे कागज पड़े थे, और नाबदान से दुर्गंध आ रही थी। ओसारे में पड़ी पुरानी बँसखट पर बहुत से गंदे कपड़े थे और रसोईघर से उस वक्त भी धुआँ उठ-उठकर सारे घर की साँस को घोट रहा था। कहीं कोई खटर-पटर नहीं हो रही थी और मालूम होता था कि घर में कोई है ही नहीं।

शीघ्र ही जमुना न मालूम किधर से निकलकर कमरे में आई और पति को देखते ही उसने घबराकर पूछा, "तबीयत तो ठीक है?"

शकलदीप बाबू ने झुँझलाकर उत्तर दिया, "मुझे क्या हुआ है,जी? पहले यह बताओ, नारायण जी कहाँ हैं?"

जमुना ने बाहर के कमरे की ओर संकेत करते हुए बताया, "उसी में पड़े हैं, न कुछ बोलते हैं और न कुछ सुनते हैं। मैं पास गई, तो गुमसुम बने रहे। मैं तो डर गई हूं।"

शकलदीप बाबू ने मुस्कराते हुए आश्वासन दिया, "अरे, कुछनीं, सब कल्याण होगा, चिंता की कोई बात नहीं। पहले यह तो बताओ, बबुआ को तुमने कभी यह तो नहीं बताया था कि उनकी फीस तथा खाने-पीने के लिए मैंने 600 रुपए कर्ज लिए हैं। मैंने तुमको मना कर दिया था कि ऐसा किसी भी सूरत में न करना।"

जमुना ने कहा, "मैं ऐसी बेवकूफ थोड़े हूँ। लड़के ने एक-दो बार खोद-खोदकर पूछा था कि इतने रुपए कहाँ से आते हैं? एक बार तो उसने यहाँ तक कहा था कि यह फल मेवा और दूध बंद कर दो, बाबू जी बेकार में इतनी फिजूलखर्ची कर रहे हैं। पर मैंने कह दिया कि तुमको फिक्र करने की जरूरत नहीं तुम बिना किसी चिंता के मेहनत करो, बाबू जी को इधर बहुत मुकदमे मिल रहे हैं।"

शकलदीप बाबू बच्चे की तरह खुश होते हुए बोले, "बहुत अच्छा। कोई चिंता की बात नहीं। भगवान सब कल्याण करेंगे। बबुआ कमरे ही में हैं न?"

जमुना ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

शकलदीप बाबू मुस्कराते हुए उठे। उनका चेहरा पतला पड़ गया था, आँखें धँस गई थीं और मुख पर मूँछें झाड़ू की भाँति फरक रही थीं। वह जमुना से यह कहकर कि 'तुम अपना काम देखो, मैं अभी आया,' कदम को दबाते हुए बाहर के कमरे की ओर बढ़े। उनके पैर काँप रहे थे और उनका सारा शरीर काँप रहा था, उनकी साँस गले में अटक-अटक जा रही थी।

उन्होंने पहले ओसारे ही में से सिर बढ़ाकर कमरे में झाँका। बाहरवाला दरवाजा और खिड़कियाँ बंद थीं, परिणामस्वरूप कमरे में अंधेरा था। पहले तो कुछ न दिखाई पड़ा और उनका हृदय धक-धक करने लगा। लेकिन उन्होंने थोड़ा और आगे बढ़कर गौर से देखा, तो चारपाई पर कोई व्यक्ति छाती पर दोनों हाथ बाँधे चित्त पड़ा था। वह नारायण ही था।

वह धीरे-से चोर की भांति पैरों को दबाकर कमरे के अंदर दाखिल हुए। उनके चेहरे पर अस्वाभाविक विश्वास की मुस्कराहट थिरक रही थी। वह मेज के पास पहुँचकर चुपचाप खड़े हो गए और अँधेरे ही में किताब उलटने-पुलटने लगे। लगभग डेढ़-दो मिनट तक वहीं उसी तरह खड़े रहने पर वह सराहनीय फुर्ती से घूमकर नीचे बैठ गए और खिसककर चारपाई के पास चले गए और चारपाई के नीचे झाँक कर देखने लगे, जैसे कोई चीज खोज रहे हों। तत्पश्चात पास में रखी नारायण की चप्पल को उठा लिया और एक-दो क्षण उसको उलटने-पुलटने के पश्चात उसको धीरे से वहीं रख दिया। अंत में वह साँस रोककर धीरे-धीरे इस तरह उठने लगे, जैसे कोई चीज खोजने आए थे, लेकिन उसमें असफल होकर चुपचाप वापस लौट रहे हों। खड़े होते समय वह अपना सिर नारायण के मुख से निकट ले गए और उन्होंने नारायण को आँखें फाड़-फाड़कर गौर से देखा। उसकी आँखें बंद थीं और वह चुपचाप पड़ा हुआ था, लेकिन शकलदीप बाबू एकदम डर गए और उन्होंने काँपते हृदय से अपना बायाँ कान नारायण के मुख से बिलकुल नजदीक कर दिया। और उस समय उनकी खुशी का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने अपने लड़के की साँस को नियमित रूप से चलते पाया।

वह चुपचाप जिस तरह आए थे, उसी तरह बाहर निकल गए। पता नहीं कब से, जमुना दरवाजे पर खड़ी चिंता के साथ भीतर झांक रही थी।

उसने पति का मुँह देखा और घबराकर पूछा, "क्या बात है? आप ऐसा क्या कर रहे हैं? मुझे बड़ा डर लगा रहा है।"

शकलदीप बाबू ने इशारे से उसको बोलने से मना किया और फिर उसको संकेत से बुलाते हुए अपने कमरे में चले गए।

जमुना ने कमरे में पहुंचकर पति को चिंतित एवं उत्सुक दृष्टि से देखा।

शकलदीप बाबू ने गद्गद् स्वर में कहा, "बबुआ सो रहे हैं।"

वह आगे कुछ न बोल सके। उनकी आंखें भर आई थीं। वह दूसरी ओर देखने लगे। ●

## नकली राष्ट्रवादियों की चंद झलकियां

(पेज 18 से आगे)

का पहाड़ खड़ा करते रहे हैं। एक झूठ का खासतौर पर बड़े जोर- शोर से प्रचार किया जाता है कि 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय कम्युनिस्टों ने गद्दारी की। सच्चाई यह है कि 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' से विरत रहने का फैसला फासीवाद विरोधी संघर्ष की रणनीति की गलत समझ से लिया गया एक तात्कालिक फैसला था। तत्कालीन अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने यह गलत समझ बनायी कि चूंकि फासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे में इटली-जर्मनी की धुरी के खिलाफ ब्रिटेन समाजवादी रूस के साथ मित्र देशों के मोर्चे में शामिल है, इसलिए अंग्रेजीराज के खिलाफ संघर्ष तेज करना फासीवादी विरोधी लड़ाई को कमजोर करेगा। निश्चित रूप से यह भयंकर भूल थी। इसे ही गद्दारी कहकर आर.एस.एस. वाले प्रचारित करते हैं। लेकिन वे इन तथ्यों को जनबूझकर नजरअन्दाज कर देते हैं कि 1942 के पहले और उसके ठीक बाद कम्युनिस्टों की क्या भूमिका थी। 1942 से पहले कम्युनिस्ट साम्राज्य विरोधी संघर्ष में मजदूरों , किसानों, बुद्धिजीवियों, छात्रों, जनता के विभिन्न वर्गों की अगुवाई कर रहे थे, कुर्बानियां दे रहे थे। 1942 के बाद 1946 के जनउभारों के समय तक कम्युनिस्ट अग्रिम मोर्चों पर थे। यहां तक कि 1942 में भी पार्टी की गलत रणनीति के बावजूद ग्रासरूट स्तर पर कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां हो रही थीं। उस समय संघियों तुम कहां थे? तुम तो इन उथल-पुथल भरे दौरों में भी शाखाओं में लाठियां भांजते हुए अपनी शक्ति का संचय कर रहे थे। दरअसल, जिस तरह चोर अपनी चोरी छुपाने के लिए चिल्ला-चिल्लाकर दूसरों को चोर-चोर कहकर पकड़ने के लिए ललकारता है, उसी तरह का आचरण संघी आज तक करते चले आ रहे है। अपनी गद्दारी छुपाने के लिए बिचारे यह न करें तो स्वयम्भू देशभक्त बने कैसे घूमेंगे भला!

### बात बदलने-बात छिपाने के उस्ताद

बात बदलने-छिपाने में संघ परिवार का कोई सानी नहीं है। उसके अठारह मुंह में अठारह जीभें हैं और वे सभी अलग-अलग बातें बोलते नजर आते हैं। गोलवलकर के बाद आर.एस.एस. ने कभी लिखित रूप से अपने मंसूबों को प्रकट नहीं किया। क्योंकि चोर रंगे हाथों पकड़ लिया गया था। तब से वह वाचिक परम्परा पर ही सबसे अधिक भरोसा करती है, इसी बात बदलने-छिपाने के सुभीते के चलते।

1951 से 1967 तक आर.एस.एस. ने कभी नहीं माना कि जनसंघ उसकी राजनीतिक शाखा है। पर 1968 में उसने मान लिया। वह भी लिखित रूप में। 7 जनवरी के 'आर्गनाइजर' ने लिखा: "जहां तक भारतीय जनसंघ का मामला है, उस पर आर.एस.एस. के नियंत्रण का ही प्रश्न नहीं है, आर.एस.एस. ही उसे आदर्श कार्यकर्ता प्रदान करता है। आर.एस.एस. के इस दोहरे समर्थन के बिना जनसंघ सिर्फ एक नाम रह जायेगा संगठन नहीं।" वह आज भी ए.बी.वी.पी, विहिप, बजरंग दल से लेकर देशभर में फैले अपने पांच दर्जन अन्य आनुषंगिक संगठनों से अपनी सम्बद्धता से इनकार करता है जबकि दुनिया जानती है कि ये सभी आर.एस.एस. के 'हिन्दू राष्ट्रवाद' के एजेण्डे को ही अलग-अलग ढंग से अपने-अपने क्षेत्रों में लागू कर रहे हैं।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बाद जनसंघ की बागडोर संभालने वाले दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' की थीसिस रखी। जनता पार्टी टूटने के बाद जनसंघ का जब भारतीय जनता पार्टी के रूप में नया अवतार हुआ तो उसने सबसे पहले 'गांधीवादी समाजवाद' की खिचड़ी पकानी शुरू की, लेकिन फिर जल्दी ही उसने हांडी चूल्हे से उतारकर राममन्दिर मुद्दे को उठाया। फिर उसने कई बार पलटी खायी। कभी कहा कि राममन्दिर मुद्दा है, कभी कहा नहीं है। उसका एक मुंह 'हिन्दुत्ववाद' की गुहार लगता है तो दूसरा मुंह 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की टेर लगाता है। कभी कहा जाता है कि दोनों एक ही हैं, कभी यह कि दोनों अलग-अलग हैं। आडवाणी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद प्रेम बीच-बीच में जाग उठता है, फिर बीच-बीच में चुप लगा जाते हैं। वाजपेयी जी का क्या कहा जाये? बातों को बदलने और घुमाने के फ़न के सबसे बड़े फनकार तो वहीं हैं। गुजरात की घटनाओं पर उनके एक दूसरे से उलट कितने बयान आये, उनकी गिनती करना भी मुश्किल है। विदेश में जाने पर वे शर्मसार होते हैं तो देश में गर्व महसूस होने लगता हैं कभी मोदी को राजधर्म निभाने की नसीहत दे आते और उनकी दुबारा ताजपोशी पर आशीर्वाद भी दे आते हैं। उन्हें बाबरी मस्जिद शहादत से कभी देश के माथे पर कलंक लगा नजर आ जाता है तो कभी यह 'राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण' बन जाता है। लम्बे समय तक उदारवादी मुखौटा लगाये रखने के बाद उसे फेंककर अपना असली स्वयंसेवक वाला चेहरा दिखा देते हैं। इतना ही नहीं वाजपेयी एक ही सांस में कई बातें बोलने की कला में भी माहिर हो चुके हैं।

रावण के दस मुख थे लेकिन वह सभी मुखों से एक साथ अट्टहास करता है। लेकिन संघ परिवार के अलग-अलग मुख और मुखौटे अलग-अलग बोलते हैं कोई अट्टहास करता है, कोई हुंकार भरता है, कोई कविता उचारता है, कोई स्वदेशी हांकता है तो कोई विनिवेश राग गाता है- संघ अनन्त, संघ कथा अनन्ता!

संघ परिवार वाले अपने गुरूजी के प्रति भी निष्ठावान नहीं हैं। पर उनसे नाता भी नहीं तोड़ते। गुरूजी की किताब तक दबा गये पर उन्हें खारिज भी नहीं करते। एक बार जब किताब की ज्यादा छीछालेदर हो गयी तो एक कृतघ्न स्वयंसेवक ने यहां तक कह दिया कि गुरूजी ने कोई मौलिक किताब हीं नहीं लिखी। कहाकि 'वी ऑर अवर नेशनहुड' तो सावरकर की राष्ट्रमीमांसा का अनुवाद है।

संघियों द्वारा बात बदलने-छिपाने, झूठ बोलने, वैचारिक कलाबाजियां खाने के इतने उदाहरण हैं कि एक पूरा ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है, पर फिलहाल बस।

### इतिहास के साथ दुराचार

देश के इतिहास के साथ दुराचार करने की संघ परिवार की गौरवशाली परम्परा रही है। प्राचीन भारत के इतिहास से दुराचार की कुछ बानगी हम ऊपर दे चुके हैं। पहले ही अनेक बानगियां और भी मौजूद हैं पर माननीय जोशी जी के नेतृत्व में आजकल जो दुराचार चल रहा है उसकी बानगियां रोज ही अखबारों में निकल रही हैं। यह दुराचार सिर्फ प्राचीन भारत ही नहीं, मध्यकाल और आधुनिक काल के इतिहास के साथ भी हो रहा है।

तमाम ऐतिहासिक प्रमाणों, पुरातात्विक साक्ष्यों, दुनिया में ख्यातिप्राप्त इतिहास के अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित आधिकारिक इतिहास को फर्जी इतिहासकारों द्वारा "संशोधित" करवाया जा रहा है। अब यही कलुषित इतिहास नयी पीढ़ी को पढ़ाया जायेगा। युवा पीढ़ी के विवेक को कुण्ठित कर उसकी तर्कणा को कमजोर कर, उसके मानस को खतरनाक साम्प्रदायिक विद्वेष से भर देने का यह अभियान भविष्य के लिए एक खतरनाक चुनौती बनने जा रहा है। यह युवा वर्ग की परिवर्तनकामी ऊर्जा और सर्जनात्मकता को क्षरित कर उन्हें एक अन्ध आस्थावादी उन्मादी भीड़ में बदल देने की तैयारी है। इसके कारगर प्रतिकार के लिए प्रगतिशील ताकतों को गंभीरता से सोचना होगा और ठोस कार्यक्रम बनाने होंगे।

नकली राष्ट्रवादियों की असली जन्मकुण्डली की ये चन्द झलकियां भर हैं। क्या इतना पर्याप्त नहीं है? ●

# मदमत्त साम्राज्यवादी हाथी गहरे दलदल की ओर

गीतिका

विश्व प्रभुत्व के मद में चूर अमेरिकी साम्राज्यवाद दुनिया की जनता के जबर्दस्त विरोध से आंखें मूंदे हुए इराकी जनता के कत्लेआम की तैयारियों में जोर-शोर से जुटा हुआ है। सिर से पांव तक खुद जनसंहार के हथियारों से लदे-फंदे अमेरिकी हुक्मरान इराक के पास कथित रूप से मौजूद जनसंहार के हथियारों को नष्ट करने के ऐलान के साथ एक नये जनसंहार की ओर कदम बढ़ा चुके हैं। उसके जंगी बेड़े खाड़ी में कूच कर चुके हैं और उम्मीद की जा रही है कि मध्य फरवरी में इराकी जनता पर कहर टूट सकता है।

जार्ज बुश जूनियर की अगुवाई में हुक्मरान दुनिया को आतंकवाद से मुक्त करने के नाम पर अपने सामराजी मंसूबों को पूरा करने के लिए जिस तरह की नंगई और हेकड़ी दिखा रहे हैं वह बेमिसाल है। संयुक्त राष्ट्र संघ के हथियार निरीक्षकों का अभी अपना 'मिशन' पूरा भी नहीं कर सका है, लेकिन अमेरिकी हुक्मरान पहले से तैयार बैठे हैं कि अगर रिपोर्ट मनमाफिक नहीं आयी तो उसे खारिज कर इराक पर हमला बोल देंगे। वह भी तब जबकि इराकी सरकार हथियार निरीक्षकों के दल को पूरा सहयोग कर रही है और उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की तय सीमा के भीतर देश में मौजूद हथियारों और भावी हथियार कार्यक्रमों का पूरा लिखित ब्यौरा भी हथियार निरीक्षकों को सौंप दिया है।

दरअसल अमेरिकी शासकों को हथियार निरीक्षक दल में घुसे अपने जासूसों के जरिये यह भान हो चला है कि रिपोर्ट उनकी मनमाफिक नहीं आने वाली है। दल के प्रमुख हांस ब्लिक्स भी अब तक कई सार्वजनिक बयानों में यह स्वीकार कर चुके हैं कि इराकी सरकार उन्हें पूरा सहयोग कर रही है। लेकिन फिर भी बुश-ब्लेयर और उनकी जंगजू मण्डली ने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है कि इराक तथ्यों को छुपा रहा है। इराक सरकार द्वारा निरीक्षक दल को सौंपी गयी रिपोर्ट का अध्ययन करने के बाद और इराक के भीतर निरीक्षण की प्राथमिक रिपोर्ट 27 जनवरी '03 को संयुक्त राष्ट्र सभा के समक्ष पेश होनी है पर मगरूर अमेरिकी हुक्मरानों को इन औपचारिकताओं से भला क्या लेना-देना? इराक सरकार की लिखित रिपोर्ट हासिल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यालय से कोलम्बिया प्रतिनिधि (कोलम्बिया इस समय संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष है) पर धौंसपट्टी जमाते हुए, ब्लैकमेलिंग करते हुए अमेरिकी अधिकारियों ने इराकी रिपोर्ट की फोटो कापी हासिल कर ली। 'शीतयुद्ध' के बाद की दुनिया में संयुक्त राष्ट्र संघ की नपुंसकता देखिए कि अपने दफ्तर में दिनदहाड़े डाली गयी इस डकैती के खिलाफ वह कुछ नहीं कर सका।

अमेरिकी हुक्मरान इराक पर इकतरफा हमला करने और वहां कत्लेआम मचाने का मन पहले से ही बना चुके हैं। 'आतंकवाद के खिलाफ बेमियादी जंग' की मुहिम के तहत अफगानिस्तान के बाद अगला निशाना इराकी जनता होगी, यह अफगानिस्तान में नयी सरकार बनने की प्रक्रिया शुरू होने के समय से ही साफ हो चुका था। इराक-ईरान-उत्तर कोरिया को "शैतानी धुरी" घोषित करने के पीछे "शैतानी कहर" से दुनिया को बचाना नहीं वरन दुनिया की जनता पर अमेरिकी शैतान का कहर बरपा करने का मंसूबा ही काम कर रहा है।

दरअसल, अफगानिस्तान में अपनी पिट्ठू सरकार कायम कर लेने और इसके जरिये मध्य एशिया में अपना एक महत्वपूर्ण मिलिटरी चेक पोस्ट सुरक्षित कर लेने के बाद अमेरिकी हुक्मरानों का मंसूबा समूचे पश्चिम एशिया की भू राजनीतिक शक्ल को बदल देना है। इराक पर हमला करने और सद्दाम हुसैन का तख्तापलट करने के पीछे इराकी तेल भण्डारों पर कब्जा जमाने के बुनियादी मंसूबे के साथ-साथ अनेक राजनीतिक-सामरिक मंसूबे काम कर रहे हैं। अमेरिकी हुक्मरान यह अच्छी तरह समझ चुके हैं कि इराक में सद्दाम हुसैन की सत्ता के बने रहते फिलिस्तीनी राष्ट्र के सवाल को भी वे अधिक से अधिक अपनी अनुकूल शर्तों पर नहीं हल करा सकते। इसके साथ ही अमेरिकी शासक इराक में अपनी पिट्ठू सरकार कायम कर खाड़ी के अपने पुराने पिट्ठुओं (सऊदी अरब, कुवैत आदि शेखशाहियों) पर निर्भरता भी कम करना चाहते हैं। मुख्तसर यह कि वे पश्चिम एशिया में 'नयी व्यवस्था' कायम करना चाहते हैं।

पर दुनिया पर एकतरफा अपने मंसूबों को थोपने के रास्ते में फिलहाल अमेरिका के दूसरे साम्राज्यवादी बिरादर ही तरह-तरह से अड़ंगे डाल रहे हैं। स्थिति यह है कि इराक पर हमले के सवाल पर वह एकदम अलग-थलग पड़ चुका है। फ्रांस, जर्मनी, रूस से लेकर यूरोपीय समुदाय के अधिकांश देश और तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासक भी अमेरिका के एकतरफा हमले का समर्थन-सहयोग करने के लिए तैयार नहीं दिख रहे हैं। अमेरिकी योजना को आंख मूंदकर समर्थन देने वाले ब्रिटेन के हुक्मरान भी अब हिचकिचाने लगे हैं। दरअसल एक तो वे पश्चिम एशिया में एकछत्र अमेरिकी चौधराहट के खिलाफ है और दूसरे इराक पर हमले के खिलाफ जिस तरह समूची दुनिया में जनता का जबर्दस्त विरोध उठ खड़ा हुआ है उससे वे भयाक्रान्त हो उठे हैं। खाड़ी के देशों में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के खिलाफ आक्रोश की ज्वाला धधक ही रही है खुद अमेरिका और यूरोपीय समुदाय के भीतर युद्ध विरोधी प्रदर्शनों की बाढ़ आ गयी है। लन्दन-पेरिस-बान-रोम से लेकर न्यूयार्क-वाशिंगटन-कैलीफोर्निया तक जनता इराकी जनता के संहार के मंसूबों के खिलाफ मुट्ठियां ताने हुए है। खाड़ी के अमेरिकी पिट्ठुओं को दुःस्वप्न सताने लगा है, इसीलिए वे अमेरिका से सब्र करने की अपीलें कर रहे हैं।

लेकिन फिलहाल जंग की अमेरिकी तैयारियों को देखते हुए इस बात की उम्मीद कम ही दिख रही है कि वह अपने कदम पीछे हटायें अपने घरेलू आर्थिक-राजनीतिक संकटों के भंवर में फंसे अमेरिकी हुक्मरान इतने बदहवास और मदान्ध हो चुके हैं कि दुनिया की जनता के विरोध और अपने बिरादरों की अड़ंगेबाजियों के बावजूद वे आत्मघाती राह पर आगे बढ़ते ही जा रहे हैं। लेकिन अंजाम से बेखबर अमेरिकी हुक्मरान उत्तर कोरिया के खिलाफ भी आस्तीनें चढ़ाना शुरू कर चुके हैं। यह अलग बात है कि उत्तर कोरिया के शासकों पर इस बन्दरघुड़की का असर होने की बजाय वे अमेरिकी शासकों के फसान का फायदा उठाते हुए जवाबी धमकियां दे रहे हैं।

इस बात की पूरी सम्भावना है कि अगर अमेरिकी शासकों ने इराक पर हमले की साम्राज्यवादी मूर्खता की तो यह अरब जनता की साम्राज्यवाद विरोधी भावनाओं के अभूतपूर्व विस्फोट को जन्म देंगी जिसका नतीजा उनके लिए कोरिया-वियतनाम युद्ध की तरह भयानक दुःस्वप्न बन सकता है। हो सकता है कि किसी सूरत में बुश एण्ड कम्पनी इराक पर हमले का इरादा टाल दे, लेकिन फिलहाल दिख यही रहा है कि मदमत्त साम्राज्यवादी हाथी झूमता-झामता एक गहरे दलदल की ओर अग्रसर है।

17 जनवरी, 2003 ●

## शहीदे आज़म भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु और गणेशशंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस ( 23 मार्च ) पर

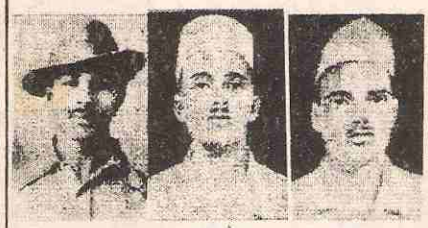

भगत सिंह सुखदेव राजगुरु

"सभी देशों को आजाद करवाने वाले वहां के विद्यार्थी और नौजवान हुआ करते हैं क्या हिन्दुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पायेंगे? नौजवान 1919 में विद्यार्थियों पर किये गये अत्याचार भूल नहीं सकेते। वे पढ़े। जरूर पढ़े। साथ ही पालिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब जरूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपना जीवन इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें। वरन बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता।"

**( विद्यार्थी और राजनीति ( 'करती' पत्रिका में प्रकाशित जून 1928 ) लेख से )**

**पेज 20 से आगे...**

## छात्र असंतोष सड़कों पर

की करारी हार के बाद सत्ता हाथ में आयी थी। और आज एक बार फिर भविष्य के उथल-पुथल भरे दिनों के पूर्व संकेत मिलने लगे हैं। आज सरकारें 1942, 1967, 1974 के मुकाबलें कहीं अधिक नंगे रूप में पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम कर रही हैं। पूंजी और श्रम अब मैदान-ए-जंग में एक दूसरे के बिल्कुल आमने-सामने खड़ें हैं। मजदूरों और आम मध्यवर्ग के नौजवान सपूतों के दिलों में जबर्दस्त गुस्सा भरा हुआ है। एक नहीं हजार कारण है जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि आने वाले दिनों में क्रान्तिकारी विस्फोट होंगे और हमेशा की तरह युवा अगली कतारों में होंगे। इसलिए आज समय है कि अतीत के आन्दोलनों से माकूल सबक निकाले जायें ताकि उस विस्फोट की प्रचण्ड और कच्ची ऊर्जा को व्यवस्था के विरुद्ध एक संगठित ऊर्जा में तब्दील करने में कोई चूक न हो सके।

लेकिन एक विडम्बना आज भी हमारे सामने खड़ी है। क्रान्तिकारी संभावनाओं के बरक्स क्रान्तिकारी ताकतों की स्थिति आज भी कमजोर है। लेकिन यह स्थिति हमारे लिए चिन्ता नहीं चुनौती का विषय होना चाहिए। परिवर्तनकामी ताकतों को भविष्य-संकेतों से जरूरी नतीजे निकालते हुए अपनी तैयारियां अभी से तेज कर देनी होंगी।

यह ठहराव बहुत लम्बा रहा हैं इसलिए विस्फोट भी उतना ही प्रचण्ड होगा। हमारी पीढ़ी के उन्नत चेतनासम्पन नौजवानों के सामने ही इसे संगठित व्यवस्था विरोधी विद्रोह का स्वरूप देने और विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने का काम करना है क्योंकि क्रोध को विवेक और विद्रोह को दिशा की दरकार होती है। हमें तैयार होना ही होगा। इतिहास हमें एक और अवसर देने जा रहा है। ●


बजा बिगुल मेहनतकश जाग,
चिंगारी से लगेगी आग!
**'बिगुल'**
मज़दूरों का इंकलाबी अख़बार
सम्पर्क: 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, लखनऊ-226006
मूल्य: रु. 3/- वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 40/-

घटिया साहित्य के घटाटोप और अपसंस्कृति के अंधेरे में जनता की संस्कृति का एक सजग प्रहरी
**जनचेतना**
पुस्तकें मंगाने के लिए आज ही हमसे संपर्क करें।
सम्पर्क: डी- 68, निरालानगर- लखनऊ- 226020 फोन: 2786782

इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है!
**जयकारा**
समाज परिवर्तन की राह पर चलने वालों की पंजाबी पत्रिका
मूल्य: रु. 15/-

राजा- रानियों के किस्सों, अंधविश्वासों और कामिक्स की दुनिया से बाहर लाकर दुनिया को सुन्दर बनाने का अहसास कराने वाली बच्चों की अपनी पत्रिका
**अनुराग** बाल पत्रिका
मूल्य: १०/- वार्षिक सदस्यता शुल्क: रु. ४८/-
सम्पर्क: डी- 68, निरालानगर- लखनऊ- 226020 फोन: 2786782

दिशा का संकल्प
खड़ा करेंगे एक नया विकल्प!
दिशा का रास्ता
परिवर्तनकामी छात्रों का रास्ता!
**दिशा का नारा-भविष्य हमारा!**

चीज़ों को बदलने के लिए चीज़ों को समझना होगा,
चीज़ों को बदलने की प्रक्रिया मं खुद को बदलना होगा!
**दायित्वबोध**
सम्पर्क: द्वारा सत्यम वर्मा, 81, समाचार- अपार्टमेन्ट, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091, फोन- 22711136

## बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है!

# परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकें

**मां**
**मक्सिम गोर्की का अमर उपन्यास**
पृष्ठ 448 • 70 रुपये

**शहीदेआजम की जेल नोटबुक**
एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य • भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज • भगतसिंह की शहादत के 68 वर्ष बाद हिन्दी में पहली बार प्रकाशित ❑ पृष्ठ 200 • 50 रुपये

**विचारों की सान पर**
भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए दस्तावेज़, पत्र और वक्तव्य ❑ पृष्ठ 104 • 20 रुपये

**माओ त्से-तुङ की कविताएं**
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियों के साथ
अनुवाद एवं सम्पादन : *सत्यव्रत* ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

**चिरस्मरणीय**
कय्यूर के किसान आन्दोलन के शहीदों पर लिखा निरंजन का प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास, अनुवाद : *रामकृष्ण पाण्डेय* ❑ पृष्ठ 168 • 35 रुपये

**बेर्टोल्ट ब्रेष्ट : इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां**
मूल जर्मन से अनुवाद : *मोहन थपलियाल* ❑ पृष्ठ 148 • 60 रुपये

**लहू है कि तब भी गाता है**
(पाश के सभी संग्रहों से चयनित प्रतिनिधि कविताओं का संकलन)
संपादक : *चमनलाल एवं कात्यायनी* ❑ पृष्ठ 176 • 75 रुपये

**चुनी हुई कहानियां : मक्सिम गोर्की (पहला खण्ड)**
पृष्ठ 168 • 35 रुपये

**पांच कहानियां : पुश्किन** ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

**दो अमर कहानियां : लू शुन** ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

**श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद** ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

**तीन कहानियां : गोगोल** ❑ पृष्ठ 144 • 30 रुपये

**दुर्ग द्वार पर दस्तक**
*कात्यायनी* ❑ पृष्ठ 152 • 50 रुपये (द्वितीय संशोधित संस्करण)

**माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**
*रेमण्ड लोट्टा* के दो महत्वपूर्ण लम्बे लेखों का संकलन
पृष्ठ 104 • 25 रुपये

**समर तो शेष है...**
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन ❑ पृष्ठ 144 • 35 रु. रुपये

**क्रान्ति का विज्ञान**
*लेनी वुल्फ* ❑ पृष्ठ 36 • 10 रुपये

**अब इंसाफ होने वाला है**
उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन
संपादक : *शकील सिद्दीकी* ❑ पृष्ठ 248 • 75 रुपये

**मध्यवर्ग का शोकगीत**
हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर की कविताएं
सम्पादन एवं अनुवाद : *सुरेश सलिल* ❑ पृष्ठ 72 • 25 रुपये

# राहुल फाउण्डेशन के प्रकाशन

| | |
|---|---|
| माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण | 35 रुपये |
| Quotations from Mao Tse-Tung | 40 रुपये |
| पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन —*लेनिन* | 15 रुपये |
| द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —*वी. अदोरात्स्की* | 15 रुपये |
| राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक आफ पोलिटिकल इकॉनमी) प्रत्येक खण्ड | : 60 रुपये |
| कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र —*कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स* | 10 रुपये |
| बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में —*चाङ चुन-चियाओ* | 3 रुपये |
| मई दिवस का इतिहास —*अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग* | 3 रुपये |
| अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन —*एल्बर्ट रीस विलियम्स* | 75 रुपये |
| ***दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला*** | |
| अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं —*दीपायन बोस* | 10 रुपये |
| समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —*शशिप्रकाश* | 12 रुपये |
| क्यों माओवाद —*शशिप्रकाश* | 10 रुपये |
| ***बिगुल पुस्तिका श्रृंखला*** | |
| कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —*वी.आई. लेनिन* | 5 रुपये |
| मकड़ा और मक्खी —*विल्हेल्म लीब्कनेख्त* | 2 रुपये |
| ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके —*सर्जी रोस्तोवस्की* | 2 रुपये |

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :

**जनचेतना**
डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 ✆ (0522) 788932
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें)

# खत्म करो पूंजी का राज! लड़ो, बनाओ लोक स्वराज!

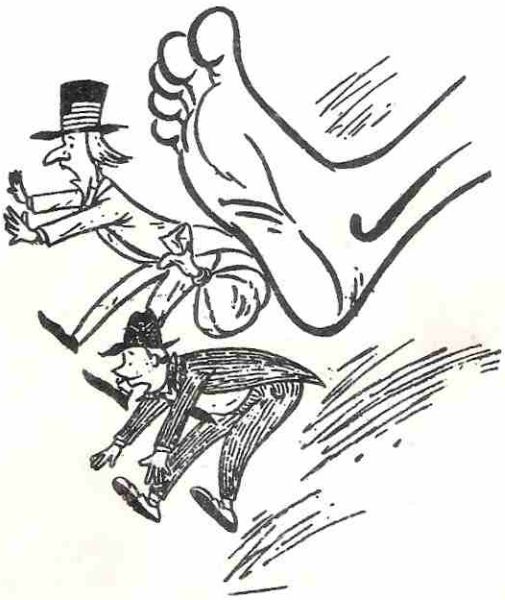

**गांव-गांव में अलख जगाकर**
**विदेशी लूट मिटाएंगे**
**देशी कफनखसोटों को भी**
**लड़कर मार भगाएंगे**
**कसम शहीदों की भारत में**
**लोक स्वराज बनाएंगे**

"...हम मानते हैं कि नये सिरे से सब कुछ शुरू करना होगा। मेहनतकश जनता के राज्य और समतामूलक समाज के निर्माण की परियोजनाओं को पुनर्जीवित करना होगा। पूरी दुनिया के पैमाने पर, पिछली सदी के आखिरी चौथाई हिस्से के दौरान मेहनतकशों के इंकलाबों का कारवां रुक-सा गया है और भटका और बिखरा भी है। पूंजीवादी लूट और हुकूमत के तौर-तरीकों में भी अहम बदलाव आये हैं। उन्हें समझना होगा और नई क्रान्तियों की राह निकालनी होगी। यह कठिन है पर असम्भव नहीं। हर नया काम कठिन लगता है। हर नई शुरुआत मजबूत संकल्पों की मांग करती है। इतिहास के हजारों वर्षों के सफर का यह सबक है और पूंजीवादी लूटतंत्र के असाध्य संकटों और लाइलाज बीमारियों को देखते हुए यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि पराजय झेलने के बाद क्रान्तियां फिर से परवान चढ़ेंगी। यह सदी नई, फैसलाकुन क्रान्तियों की सदी होगी।

यह हमारा दृढ़ विश्वास है और इस विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि भारत की मेहनतकश जनता भी इस नये विश्व-ऐतिहासिक महासमर में पीछे नहीं रहेगी, बल्कि अगली कतारों में रहेगी। 85 फीसदी लोगों के दुखों और बर्बादियों के सागर में 15 फीसदी लोगों के समृद्धि के टापू और उन पर खड़ी विलासिता की मीनारें हमेशा के लिए कायम नहीं रह सकती। यह तूफान के पहले का सन्नाटा है। इसीलिए हुक्मरान बेचैन हैं। तरह-तरह के नये-नये काले कानून बनाकर, पुलिस-फौज को चाक-चौबन्द करके वे निश्चिन्त होना चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। उन्हें लगने लगा है कि आम जनता को बांटने-बरगलाने के लिए उछाले जाने वाले मुद्दे और छोड़े जाने वाले शिगूफे भी बहुत दिनों तक काम नहीं आयेंगे। पूंजीवादी जनतंत्र की कलई चारों ओर से उतर रही है। नया रंग-रोगन टिकता नहीं। इसलिए भारत की पूंजीवादी राज्यसत्ता फासिस्ट निरंकुशशाही की ओर खिसकती जा रही है।

इसलिए, 'क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान' के जरिए हम इतिहास को गढ़ने वाले और अपने बलिष्ठ हाथों से समय के प्रवाह को मोड़ देने वाले मेहतनकश अवाम के पराक्रम को ललकार रहे हैं और एक नई, कठिन और निर्णायक लड़ाई की तैयारी में शामिल होने के लिए उन तमाम लोगों को निमंत्रण दे रहे हैं, जिनकी आत्माएं युवा हैं, जो सच्चे अर्थों में जिन्दा हैं।"

**दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, देहाती मज़दूर-किसान यूनियन, नारी सभा, दायित्वबोध मंच और नौजवान भारत सभा की ओर से पिछले छह वर्षों से चलाये जा रहे क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान के पर्चा संख्या-4 के अंश**

प्रमुख सम्पर्क: ❑ बिगुल, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ❑ 'आह्वान' कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर ❑ विजयकुमार, 55/3, ई. डब्ल्यू.एस., आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर ❑ कृष्णगोविन्द सिंह, S H -1/49,A-24 (प्रथम तल) जयनगर कालोनी गिलट बाजार वाराणसी – 221002, ❑ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-91